ISSN 2278-1633ANTIM JAN

गांधी दर्शन
अंतिम जन

फाल्गुन विक्रम संवत् 2081 मूल्यः ₹20

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति संग्रहालय

समिति के दो परिसर हैं- गांधी स्मृति और गांधी दर्शन।

गांधी स्मृति, 5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित है। इस भवन में उनके जीवन के अंतिम 144 दिनों से जुड़े दुर्लभ चित्र, जानकारियाँ और मल्टीमीडिया संग्रहालय (Museum) है। जिसमें प्रवेश निःशुल्क है।

दूसरा परिसर गांधी दर्शन राजघाट पर स्थित है। यहाँ 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश' प्रदर्शनी, डोम थियेटर और राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र संग्रहालय (Museum) है।

दोनों परिसर के संग्रहालय प्रतिदिन प्रातः 10 से शाम 6:30 तक खुलते हैं।

(सोमवार एवं राजपत्रित अवकाश को छोड़ कर)

गांधी दर्शन

अंतिम जन

वर्ष-7, अंक: 9, संख्या-58

फरवरी 2025

प्रधान सम्पादक

डॉ. ज्वाला प्रसाद

सम्पादक

प्रवीण दत्त शर्मा

पंकज चौबे

परामर्श

वेदाभ्यास कुंडू

संजीत कुमार

प्रबन्ध सहयोग

शुभांगी गिरधर

आवरण

संजीव शाश्वती

मूल्य	: ₹20
वार्षिक सदस्यता	: ₹200
दो साल	: ₹400
तीन साल	: ₹500

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110002

फोन : 011-23392796

ई-मेल : antimjangsds@gmail.com
2010gsds@gmail.com

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट,
नई दिल्ली-110002, की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली के नहीं।
समस्त मामले दिल्ली न्यायालय में ही विचाराधीन।

मुद्रक
पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092

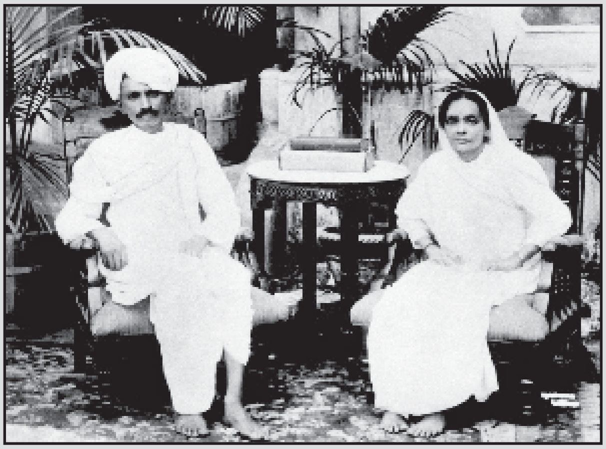

इस अंक में

धरोहर
'प्रभु मुझ निर्मल को सत्य शोधन का बल दे' - *मोहनदास करमचंद गांधी* 5

भाषण
देश के विकास का माध्यम है खेल - *श्री नरेंद्र मोदी* 10

व्याख्यान
राजेंद्र बाबू उस मिट्टी के बने थे, जिसे भारत कहा जाता है - *हरिवंश* 14

संस्मरण
रामायण और भागवत में श्रद्धा - *वनमाला परीख, सुशीला नय्यर* 24

स्मरण
कस्तूरबा की गृहस्थी - *शरत कुमार महांति* 29

मातृभाषा पर विशेष
मातृभाषा में सीखना आनंदप्रद है -*डॉ शुभंकर मिश्र* 33

विचार
उच्च शिक्षा में सुधार की दिशा -*प्रो. रसाल सिंह* 36

व्यक्तित्व
"नेपाल में गांधी विचार के वाहक: तुलसी मेहर बाबा" -*डॉ. प्रिंस कुमार सिंह* 41

कविता
नरेन्द्र शुक्ल की कविताएं 45

फोटो में गांधी 49

बाल उपन्यास
अंतरिक्ष का फोन II - *क्षमा शर्मा* 50

किताब
लोहिया का मानव-सामीप्यवादी मूल्य-बोध -*डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी* 56

गांधी क्विज-10 59

गतिविधियाँ 60

महात्मा गांधी और कुम्भ मेला

कुंभ मेला भारत के सबसे बड़े धार्मिक आयोजनों में से एक है, जहाँ करोड़ों श्रद्धालु गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के संगम में स्नान करने आते हैं। इसका महत्व केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक भी है। कुंभ मेले में संतों, विचारकों और समाज सुधारकों की भागीदारी हमेशा से रही है।

महात्मा गांधी का कुंभ मेले से विशेष संबंध रहा है। 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गांधीजी ने भारत में अपने जनसंपर्क अभियान के तहत कुंभ मेले का उपयोग किया था। 1915 के हरिद्वार कुंभ मेले में वे आए और वहाँ लोगों से संवाद स्थापित किया और उन्हें स्वतंत्रता के आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया। यहाँ लोगों द्वारा गंगा के किनारे फैलाई गंदगी से उनकी प्रसन्नता गुस्से में बदल गई। नाराज होकर उन्होंने लिखा–''ऋषिकेश और लक्ष्मण झूले के प्राकृतिक दृश्य मुझे बहुत पसंद आए। परन्तु दूसरी ओर मनुष्य की कृति को वहां देख चित्त को शांति न हुई। हरिद्वार की तरह ऋषिकेश में भी लोग रास्तों को और गंगा के सुन्दर किनारों को गन्दा कर डालते थे। गंगा के पवित्र पानी को बिगाड़ते हुए उन्हें कुछ संकोच न होता था। दिशा–जंगल जाने वाले आम जगह और रास्तों पर ही बैठ जाते थे, यह देख कर मेरे चित्त को बड़ी चोट पहुंची।''

गांधीजी ने कुंभ मेले को सामाजिक सुधारों के प्रचार का एक मंच बनाया। उन्होंने वहाँ छुआछूत के खिलाफ आवाज उठाई और स्वच्छता का संदेश दिया। उनका मानना था कि धार्मिक आयोजनों में केवल आत्मिक शुद्धि नहीं, बल्कि सामाजिक और शारीरिक स्वच्छता भी महत्वपूर्ण होनी चाहिए।

2025 में प्रयागराज में कुम्भ मेले का आयोजन भी गांधी के सपनों को साकार करता है। यह हर्ष की बात है कि कुम्भ मेले में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा गया। 200 हेक्टेयर में फैले विशाल मेला क्षेत्र में श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए 44 घाट बनाए गए व इन घाटों की स्वच्छता के लिए 15,000 सफाई मित्र और 2500 से अधिक गंगा सेवा दूतों ने कुम्भ मेले को पवित्र और स्वच्छ रखा। लोगों की सुविधा के लिए डेढ़ लाख शौचालय बनाए गए।

अंतिम जन का नया अंक आप सबके समक्ष है। इसमें संकलित सामग्री आपको कैसी लगी, जरूर बताइएगा।

डॉ ज्वाला प्रसाद

आपके ख़त

नारी शक्ति की प्रतीक 'बा'

कस्तूरबा गांधी को हम महात्मा गांधी की पत्नी के रूप में जानते हैं। लेकिन उनका केवल इतना ही परिचय देना उनके व्यक्तित्व के साथ अन्याय करना है। वे एक बड़ी महिला स्वतंत्रता सेनानी थी, जिन्होंने बापू के अनेक आंदोलनों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और असंख्य महिलाओं को प्रेरित किया। वास्तव में वे नारी शक्ति का प्रतीक हैं।

कस्तूरबा यानी बा ने जीवन भर गांधी का साथ दिया। लेकिन गांधी जैसे विशाल व्यक्तित्व की पत्नी होने के बावजूद वे अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखती थीं। जहां उन्हें ठीक लगा, वहाँ उनका मत बापू के मत से अलग नजर आया।

कस्तूरबा गांधी ने महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ आंदोलन में गांधीजी के साथ मिलकर संघर्ष किया और जेल भी गई। 1917 में चंपारण आंदोलन में कस्तूरबा ने बिहार की महिलाओं को संगठित किया और उन्हें स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में उन्हें गांधीजी के साथ पुणे के आगाखां महल में कैद किया गया। जहां 22 फरवरी 1944 को वे चल बसीं।

कस्तूरबा गांधी भारतीय समाज में महिलाओं की शक्ति, धैर्य और आत्मसम्मान की प्रतीक हैं। उन्होंने दिखाया कि एक नारी न केवल परिवार का संबल हो सकती है, बल्कि समाज और राष्ट्र को भी दिशा दे सकती है। उनका जीवन आज भी महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

लक्की शर्मा, न्यू अशोक नगर, दिल्ली

गांधी दर्शन से अवगत कराती पत्रिका

'गांधी दर्शन अंतिमजन' पत्रिका गांधीजी की सेवा को आगे बढ़ाने में समर्थ है, जनवरी 2025 अंक जिसे मैंने विश्व पुस्तक मेला में पहली बार पाया... नवीन बातों से अवगत हुआ..'यज्ञ करो और खाओ' क्या कोई गांधी की तरह अपने जीवन में सफल हुआ है। याद आती है बापू की बूझती आँखें, एक मतिभ्रम व्यक्ति ने बापू को मार डाला, प्राकृतिक चिकित्सा के समर्पित हिमायती गांधी जी,' युवा इस देश का नमक है, आत्म निर्भरता की भारतीय संकल्पना और महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस एवं डॉ अम्बेडकर की प्रतिबद्धताएँ, ग्रामश्री, स्मृति तर्पण...

गाली देना भी हिंसा है! उनकी हत्या एक षड्यंत्र था... भारतीय आत्मा, ईसा, पैगम्बर... का अगला संस्करण गांधी शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र जिसे महात्मा गांधी ने देश दुनिया को न प्रभावित किया हो, गांधी के विषय में बहुत कुछ युवा पीढ़ी नहीं जानती है, अंतिम जन तक, गांधी दर्शन पहुंचाने का काम पत्रिका करती प्रतीत होती है, काश! देश के तमाम स्कूलों / शिक्षकों तक पत्रिका की पहुँच सुनिश्चित हो पाती।

(डॉ) सीरा प्रसाद,

पटना-14 नेहरू आदर्श विहार, रूकन्पुरा.

कस्तूरबा गांधी की पुण्यतिथि पर

कस्तूरबा

नेताजी की राष्ट्रमाता
मां बाप की कस्तूर
आस-पड़ोस की कस्तूरी
मोनिया, मोहन की संगिनी
सिर्फ अपनी
अधिकार ही अधिकार
अधिकार से बाहर धिक्कार।
खुद से सीखने की चाह
पति की शिक्षण की राह
मोह का रोड़ा
घणा नहीं तो थोड़ा
मन को मोड़ा
असफलताओं का जोड़ा।
हार न मानी
पति करता मनमानी
कस्तूरबा ने पक्की ठानी
नहीं चलेगी मनमानी।
नया जीवन, नई राह
दृढ़ता की अपनी चाह
नहीं झुकूंगी, नहीं टुटूंगी
अपनी राह पर साथ चलूंगी।
दुख सहना
मुंह से न कहना
सहन करती घात
रखती अपनी बात।
झेले उतार चढ़ाव
बंधन और बहाव
रहा सहज स्वभाव
पके मन के भाव।
कैसा भी मचा धमाल
सबकी करी संभाल
बिगड़ी नहीं जीवन चाल
ऐसा बा ने किया कमाल।
बापू को समझाया
नया जीवन अपनाया
कमजोर थी काया
बनकर रही छाया।
जेल की राह अपनाई
रोग ने पकड़ी कलाई
नहीं कभी घबराई
जीवन वापिस पाई।
अनेक आई मजबूरी
रखी छद्म से दूरी
न छोड़ी अपनी धुरी
दिखावे से रखी दूरी।
बा की जीवन रेखा
प्रेम घट घट में देखा
देश को माना अपना परिवार
सेवा, त्याग के लिए सदैव तैयार
देश के लिए जीवन अर्पण
बापू के प्रति सच्चा समर्पण।
करेंगे-मरेंगे, बापू का नारा
बा को लगा बड़ा ही प्यारा
नौ अगस्त की गिरफ्तारी
मरने तक की पूरी तैयारी
आगा खां पैलेस, पूणे में जेल बनाई
महादेव, कस्तूरबा की बलि चढ़ाई।
बापू पड़ गए चाहे अकेले
सीने में अनेकों दुख झेले
नहीं बाजी कभी हारी
सत्याग्रह की रही तैयारी
प्रार्थना का समय, तीस जनवरी आई
पीठ नहीं दिखाई, सीने पर गोली खाई।
सत्य, अहिंसा, प्रेम पर जिन्होंने जीवन वारा
पापियों ने अद्‌भुत जोड़ी, बा-बापू को मारा।
बा बापू तूम्हें शत शत सलाम
देश का बढ़ाया दुनिया में सम्मान
नेताजी थे सच्चे ज्ञाता
कस्तूरबा को कहा राष्ट्रमाता।।

रमेश चंद शर्मा

आप भी पत्र लिखें। सर्वश्रेष्ठ पत्र को पुरस्कृत कर, उपहार दिया जाएगा।

‘प्रभु मुझ निर्मल को सत्य शोधन का बल दे’

मोहनदास करमचंद गांधी

आपने काठियावाड़ की ओर से हरिजन सेवा के लिए जो थैली दी है, उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। हरिजन सेवा के प्रति और काठियावाड़ के प्रति आपके भीतर आत्मविश्वास की इतनी कमी है कि आपने यहाँ से 25,000 रुपये देने का जो संकल्प किया था, आपके मन में उसे पूरा कर सकने का भी भरोसा नहीं था और आपने सोचा था कि अगर इतना इकट्ठा न हो सका तो आप कुछ लोग मिलकर तीन-चार हजार रुपया अपनी तरफ से डालकर उसकी पूर्ति कर देंगे। किन्तु जब तीस हजार रुपया इकट्ठा होने की बात कही गई तो आप लोग बहुत खुश हुए और आप लोगों ने तालियाँ बजाई। मुझे ऐसा नहीं लगा कि यह कोई बड़ी रकम हुई। जब काठियावाड़ के विभिन्न शहरों से प्राप्त धन के आंकड़े पढ़े जा रहे थे तब आप लोगों को लगा होगा कि अरे, इन शहरों से इतना ही मिला! बांकानेर से सिर्फ 203 रुपये? और वह भी सब लोगों से कहाँ मिला है? यह तो दो-तीन व्यक्तियों ने ही दे दिया है। यही बात मोरवी के बारे में है। यहाँ काठियावाड़ में इतने सारे पहली पंक्ति के राज्य हैं; दूसरे भी बहुत-से राज्य हैं। काठियावाड़ की जनता कंगाल थोड़े ही है। यह साहसी भी है और देश में जगह-जगह बसी हुई है। किन्तु लेने वाले सकुचाते हुए जाते हैं तो देने-वाले को भी लगता है, किसलिए दें। खुश होकर पैसा दें, ऐसे लोग थोड़े ही मिलते हैं। कहाँ हरिजन सेवा का जबर्दस्त काम और कहाँ तीस हजार रुपयों की रकम। पर यह सब है कि लाखों रुपये भी काठियावाड़ दे डालता, तो भी उससे अस्पृश्यता थोड़े ही दूर हो जाती। इस राक्षस का नाश तो जब सवर्ण हिन्दुओं का दिल पिघलेगा, तभी होगा। अस्पृश्यता तो रावण रूप है। पर जिसे यह रामरूप प्रतीत होती हो, वह इसकी पूजा करेगा ही। अस्पृश्यता का जो पुजारी हो और उसका हृदय पलटे, तभी इसका तत्क्षण नाश होगा। नाश तो इसका होना ही है। गैर-राजी से हुआ, तो उस नारा का यश न तो हिन्दू-धर्म को मिलेगा, न हिन्दू धर्मावलम्बियों को। जिस दिन हरिजनों में इतनी जागृति आ जायेगी कि वे अपनी मौजूदा स्थिति को सहन न कर सकेंगे, उस दिन अस्पृश्यता

आपने काठियावाड़ की ओर से हरिजन सेवा के लिए जो थैली दी है, उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। हरिजन सेवा के प्रति और काठियावाड़ के प्रति आपके भीतर आत्मविश्वास की इतनी कमी है कि आपने यहाँ से 25,000 रुपये देने का जो संकल्प किया था, आपके मन में उसे पूरा कर सकने का भी भरोसा नहीं था और आपने सोचा था कि अगर इतना इकट्ठा न हो...।

एक क्षण भी नहीं टिक सकती। पर ऐसी दशा में अस्पृश्यता–नाशका श्रेय हमें मिलने का नहीं। इसीलिए हमें भगीरथ प्रयत्न करना है। जो लोग इस सत्यानाशी चीज को रामरूप समझकर पूज रहे हैं, उन्हें अनुनय–विनय करके मनाना है कि यह अस्पृश्यता राम नहीं, रावण है। अगर हम इतना कर सकें तो हम अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ेंगे ।

हर जगह मैं सनातनी भाइयों से मिलता हूँ, उन्हें अपनी बात समझाने का प्रयत्न करता हूँ। भावनगर में भी सनातनी है। होने ही चाहिए। क्या कोई भी जगह ऐसी हो सकती है जहाँ सनातनी न हों। यहाँ सनातनी भाइयों की ओर से एक पत्र निकला था। उसके कुछ लेख मेरे पास भी भेजे गये थे। इसलिए यहाँ के सनातनी भाइयों के बारे में मुझे मालूम था। सनातनी भाइयों से मैं हमेशा ही यह कहता आया हूँ कि जो कुछ मैं कहता हूँ, उस पर कुछ विचार तो करो। मैं इस विषय को आगे लूंगा। अभी मैं सुधारकों के सामने सनातनियों की बात रखूंगा। अगर वे अपने को रूढ़िपालन करने वालों से श्रेष्ठ समझते हैं और मानते हैं कि हम उनसे पहले चेत गये है, तो ये उनका मन नहीं जीत पायेंगे। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि सनातनियों की यह शिकायत मेरे पास आई है, कि 'हम तुम्हारे पास किसलिए आयें? आते हैं, तो सुधारकों के अखबार हमारी खिल्ली उड़ाते हैं। हम कहते कुछ हैं और वे छापते कुछ हैं। अगर नहीं आते हैं तो बदनामी करते हैं और कहते हैं कि सनातनियों के पास कुछ कहने को है ही नहीं। देखिए, इसीलिए तो ये नहीं आये। सभी अखबार तो ऐसा नहीं करते; पर हो सकता है कि कुछ एक अखबार ऐसा करते हों। यह सही है कि कुछ अखबार इन सनातनी भाइयों की निन्दा करते हैं। मनुस्मृति के दो–चार श्लोक सुनाकर ही यदि सुधारक यह कहें कि हमने सनातनियों को हरा दिया तो विजय इस भांति नहीं मिलने की। ज्यों–ज्यों इस विषय की महत्ताका हमें ज्ञान होता जाता है, त्यों–त्यों हम लोगों में नम्रता आनी चाहिए। सनातनियों के प्रति हमारा आदर–भाव भी बढ़ना चाहिए। आप कहेंगे, आदर–भाव किसलिए? उनमें अनेक तो पाखण्डी हैं और धर्म के नाम पर वे पाखण्ड का व्यापार करते रहते हैं। इस बात की चर्चा मैं कर चुका है। पाखण्ड तो संसार में रहेगा ही। मैं नहीं मानता और सुधारक भी यह नहीं मानते कि सारे सनातनी पाखण्डी हैं। सनातनियों में कितने ही ऐसे हैं जो शुद्ध हृदय से मानते हैं कि आज जो अस्पृश्यता बरती जा रही है वह बराबर ऐसी ही बनी रहनी चाहिए, नहीं तो समाज में वर्ण संकरता पैदा हो जायेगी। सदियों से चली आई प्रथा को तुरन्त छोड़ देना कठिन है। वे लोग अस्पृश्यता को धर्म मानकर उसका पालन कर रहे हैं। इसलिए मैं सुधारकों से प्रार्थना करता हूँ कि वे सनातनियों की निन्दा न करें, उन्हें तर्क से, विनय और मर्यादा पूर्वक अपनी बात समझायें ।

पाखण्ड तो संसार में रहेगा ही। मैं नहीं मानता और सुधारक भी यह नहीं मानते कि सारे सनातनी पाखण्डी हैं। सनातनियों में कितने ही ऐसे हैं जो शुद्ध हृदय से मानते हैं कि आज जो अस्पृश्यता बरती जा रही है वह बराबर ऐसी ही बनी रहनी चाहिए, नहीं तो समाज में वर्ण संकरता पैदा हो जायेगी। सदियों से चली आई प्रथा को तुरन्त छोड़ देना कठिन है। वे लोग अस्पृश्यता को धर्म मानकर उसका पालन कर रहे हैं। इसलिए मैं सुधारकों से प्रार्थना करता हूँ कि...।

मैं सनातनियों से एक सीधी–सी बात यह कहता हूँ कि आधुनिक अस्पृश्यता के लिए हिन्दू–धर्मशास्त्र में कहीं भी स्थान नहीं है। अस्पृश्यता का आज जो रूप हमारे बीच रूढ़ है, उसका तो किसी शास्त्र में समर्थन नहीं मिलता। 'आज के रूप में रूढ़ मेरे इस शब्द–समूह को बहुत–से सनातनी भाई भूल ही जाते हैं। धुरन्धर माने जाने वाले बड़े–बड़े शास्त्रियों के साथ इस विषय पर चर्चा करते समय उन्होंने मुझसे अपना अभिप्राय स्पष्ट करने को कहा, तो मैंने कहा कि एक प्रकार की अस्पृश्यता के लिए तो सारे ही संसार में स्थान है, वह तो सर्वत्र ही मानी जाती है और मानी जानी चाहिए। गन्दे आदमी को हम कब छूते हैं। जिसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही हो उससे अलग ही रहते हैं, उसे कैसे छू सकते हैं? उसे छूने जायें तो उसके मुँह की दुर्गन्ध हमें चार हाथ दूर पटक देगी। ऐसी

अस्पृश्यता तो मां-बेटे के बीच में भी होती है। पर यह आजकी अस्पृश्यता तो बीस ही नहीं, बल्कि सहस्र भुजाओं वाली राक्षसी है। इस अस्पृश्यता ने पाँच-छः करोड़ मनुष्यों को हमसे दूर फेंक दिया है। यह आज की अस्पृश्यता आखिर क्या है, आप यदि यह पूछे और यहां की म्युनिसिपैलिटी ने प्रमुख और पट्टणी साहब माफ करें तो मैं बताता हूँ। भावनगर में जो यह भंगियों की बस्ती है, यही 'आज की अस्पृश्यता' है। तीन बरस पहले इस बस्ती को मिटाकर हरिजनों के लिए नये घर बनाने की बात तय हुई थी। मगर वह हुआ नहीं। पट्टणी साहब ने आज नगरपालिका से इस बस्ती को मिटाकर नयी बस्ती बनाने को कहा है और 30,000 रुपये भी इसके लिए दे दिये हैं। नगरपालिका ने यह बात स्वीकार की है। इसलिए अब मुझे उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। 'आज की अस्पृश्यता' का दर्शन करना हो, तो कल सबेरे हो आप उस बस्ती में चले जायें। फिर यहाँ के जुलाहों की बस्ती भी देखें। देखें, वे बेचारे किस तरह वहाँ गुजर कर रहे हैं। ये सब जन्म से ही अस्पृश्य है और मरते दमतक अस्पृश्य ही रहेंगे। यहाँ कोई बुनकर पढ़ना चाहे तो वह पढ़ सकता है, स्कूल-कालेज में दाखिल हो सकता है। राज्य अथवा हरिजन सेवक संघ उसे निःशुल्क शिक्षा दिला सकता है। फिर पढ़-लिख चुकने के बाद राज्य में वह न्यायाधीश का पद भी पा सकता है। लेकिन फिर भी वह रहता अस्पृश्य ही है। हम उस बुनकर न्यायाधीश से अपना न्याय तो करा सकते हैं, पर उसे छूकर हमें नहाना तो पड़ेगा ही। ऐसा अंधेर अस्पृश्यता के नाम पर हम छः करोड़ मनुष्यों के प्रति करते चले जा रहे हैं। आजकी अस्पृश्यता के आपको और भी दर्शन कराऊँ? अस्पृश्य कौन है, मनुस्मृप्ति में इसका प्रमाण नहीं मिलता। तो फिर कहें कि सरकार को जनगणना के आंकड़े ही मनुस्मृति है। आप तो यह निश्चय कर चुके हैं कि अस्पृश्य को तो जीवन-भर अस्पृश्य ही रहना है; उसमें रत्ती-भर भी फेरफार नहीं हो सकता। किन्तु जनगणना-रिपोर्टों का कहना है कि फेरफार होता है। हर दस बरस में जब जन-गणना होती है, तब कितनी ही अस्पृश्य जातियाँ उस गणना-रोग से भर जाती है। और कितनी ही नयी पैदा हो जाती है। मगर हमने तो जिन्हें एक बार अस्पृश्य कह दिया सो कह दिया। यह है हमारी आज की अस्पृश्यता!

यहाँ सभा में अनेक सनातनी भाई होंगे। वे बतायें कि इस अस्पृश्यता के समर्थन में है कोई शास्त्र का प्रमाण? वे न जानते हों तो ये शास्त्रियों से जाकर पूछे और कोई प्रमाण दिखायें। यह मैं अभिमान के साथ नहीं कह रहा हूँ। मैंने शास्त्रों का थोड़ा-सा अध्ययन किया है। पर उनमें जो प्रमाण आये हैं, वे मुझे कुछ जेंचे नहीं। मैं कोई विद्वान नहीं हूँ, संस्कृत का ज्ञान मेरा बहुत ही अल्प है, मुझे अर्थ समझने में टीका और भाषान्तर की सहायता लेनी पड़ती है। इस लिए मेरा यह दावा नहीं है कि मैं शास्त्र-पारगामी हूँ। मैं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। जब-जब शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव मेरे सामने आया, मैंने कह दिया कि मैं तो एक साधारण आदमी हूँ, मैं शास्त्रार्थ करना क्या जानूं। मुझे तो अपनी बात आप लोगों को समझानी-भर है। मैं तो सत्य का पुजारी होने का दावा करता हूँ। सत्य का शोध करते-करते ही यह खोला छोड़ें, यही मेरी इच्छा है, और यही प्रभुसे प्रार्थना है कि वह मुझ निर्बल को सत्य-शोधन का बल दे। ऐसा मनुष्य आपको आज यह सन्देश दे रहा है कि इस आजकी अस्पृश्यता के लिए आपके पास कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। इससे विरुद्ध यदि कोई मुझे बता सकें और वह मुझे सत्य ऊँचे तो उसे मैं अवश्य स्वीकार कर लूंगा। यह मैं अनेक बार लिख चुका हूँ कि मैं शास्त्र का अर्थ कैसे करता हूँ। अध्यापक यदि विद्यार्थी की, और ज्ञानी यदि जिज्ञासु की सीमाएँ न जानता हो, तो उन दोनों के बीच हृदय का सम्बन्ध नहीं बनता । इसीसे उन्हें मेरी सीमाएँ जान लेनी चाहिए।

सुधारकों को सनातनियों के प्रति कैसी शिष्टता और नम्रता के साथ पेश आना चाहिए, यह मैं बतला चुका हूँ। सनातनियों से भी कह दिया है कि जो कार्य आज मैं कर रहा हूँ, उसे अच्छी तरह समझ लें। मन्दिर प्रवेश की बातने भी एक हब्वे का रूप धारण कर लिया है। लेकिन मैंने एक भी मन्दिर बिना जनता की मरजी के नहीं खोला है, और वह जनता कौन मन्दिर में जाने वाली। आर्यसमाजी, हरिजन या मन्दिर में विश्वास न करने वाले व्यक्ति का मत मन्दिर प्रवेश के विषय में कभी नहीं लिया गया। मन्दिर में

श्रद्धापूर्वक देव-दर्शनार्थ जाने वालों के ही मत गिने गये हैं, और जब उनकी सम्मति मिल गई, तभी वह मन्दिर हरिजनों के लिए खोला गया है। इसी रीति से मैंने अनेक मन्दिर खोले हैं। और, इस तरह मन्दिर खोलने में मैं कोई दोष नहीं देखता। मन्दिर में जानेवाले दर्शनार्थियों की इच्छा के विरुद्ध, जहां तक मेरी चलती है, कोई मन्दिर खुलता ही नहीं। और आज तो सुधारकों में मेरी चलती ही है। अब एसेम्बली में मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी जो बिल पेश हुआ है, उसे भी यदि बाकी हिन्दू सदस्य स्वीकार करने को तैयार न हों, तो वह मेरे काम का नहीं है। मुझे जबरदस्ती यह बिल पास नहीं कराना है। मैं अपने को सनातनी हिन्दू मानता हूँ। मुझे इस मर्यादा के अन्दर रहकर ही बिल को पास कराना है। इस बिल के सम्बन्ध में इन सभाओं इत्यादि में कहीं भी मत-संग्रह नहीं करता, क्योंकि शास्त्र व कानून की बात पेचीदा है। इसे साधारण जनता समझ नहीं सकती। यह तो वकीलों और शास्त्रियों का ही काम है। यह एक अटपटी-सी बात है। मैं मानता हूँ कि ऐसी अटपटी बातों को सरल करके साधारण जनता को समझाने की शक्ति मुझमें हैं। किन्तु मेरी यह शक्ति इस बिलके सम्बन्ध में लागू नहीं होती। इसीलिए मैंने इस बिल के गुण या दोप के सम्बन्ध में किसी जगह सभाओं में लोगों के मत नहीं लिये। किन्तु बिल आवश्यक है या नहीं, सो तो सामान्य मनुष्य साह ही सकता है। बम्बई में सन् 1932 के सितम्बर में हिन्दू-समाज के प्रतिनिधियों ने हिन्दू जनता के नाम पर यह प्रतिज्ञा की थी कि अबसे हिन्दू समाज में अस्पृश्यता न मानी जायेगी। प्रतिज्ञा में यह भी कहा गया था कि कुएँ, धर्मशालाएँ और तमाम सार्वजनिक संस्थाओं में प्रवेश करने और उन्हें काम में लाने का हरिजनों को उतना ही अधिकार है जितना कि सवर्ण हिन्दुओं को है। यह बात भी उस प्रतिज्ञा-पत्र में थी कि हरिजनों को सार्वजनिक मन्दिरों में भी जाने का हक है, और जब हमारे हाथ में अपने देश की सत्ता आ जायेगी, तब हम इसका कानून बना देंगे; और अगर आज कानून बनवा सकेंगे, तो बनवा देंगे। कानून का उल्लेख उसमें आया है, क्योंकि मौजूदा कानून को बदले बिना प्रगति का होना सम्भव नहीं। रास्ते में जो पहाड़ अड़ा हुआ है, उसे तो दूर करना ही होगा। फिर भी इस बिल के सम्बन्ध में जो शंका है उसे मैं दूर कर देना चाहता हूँ। बिल के बारे में मेरे ऊपर एक इलजाम लगाया गया है, और आप जानते हैं उस इलजाम का लगाने वाला कौन है? लवाटे जैसा जन-सेवक और योगी। बरसों से लवाटे जी जनता जनार्दन की सेवा करते आ रहे हैं। हां, तो उन्होंने पूना की सार्वजनिक सभा में उस दिन कहा कि गांधी तो मुसलमानों और ईसाइयों का मत लेकर बिल पास कराना चाहता है। इस बात पर मुझे हँसी आई कि लवाटे जैसा मनुष्य ऐसा क्यों मान रहा है। उनसे तो जो लोगों ने कहा था, वही उन्होंने मान लिया था। मैने उनकी आँखें खोलते हुए कहा कि जैसा आप मानते हैं वैसी कोई बात नहीं है। बिलके बारे में जो मर्यादा बाँध दी गई है, वह 'हरिजन' में कई बार प्रकाशित हो चुकी है।

अन्त में एक बात और। आपने कहा है कि हमने इतना काम किया है। पर यह कार्य तो पहाड़ के आगे राई-जैसा है। इसमें गर्व करने की कोई बात नहीं है। आप अपने काम के लिए धन्यवाद चाहते हैं, तो मैं धन्यवाद देने को तैयार हूँ। पर संकोच के साथ। आप लोगों ने यह भगीरथ कार्य नहीं किया है। काठियावाड़ी-जैसे साहसी मनुष्य इस काममें ढिलाई क्यों दिखायें? हिम्मतवर काठियावाड़ी अस्पृश्यता का पालन तो नहीं करते। फिर भी वे इस कामके प्रति उदासीन-से क्यों हैं? आज मैंने एक स्त्री को एक बैसाखी के सहारे चलते देखा और सबब पूछा तो उसने बताया कि उसके पाँव में सड़न पैदा हो गई थी। उसे कटवाना जरूरी हो गया था। अगर पाँव न काटा जाता तो विष सारे शरीर में फैल जाता और उसे जान से हाथ धोना पड़ता। हिन्दू-समाजरूपी शरीर में अस्पृश्यता एक सड़ा हुआ अंग है। उसे दूर करने का इलाज न किया गया, तो समाज का शरीर ठूंठ हो जायेगा। ठूंठा समाज फिर कैसे चल सकता है, कैसे प्रगति कर सकता है? उस अवस्था में तो उसका नाश हो गया समझो। धर्म का अंग-भंग करके क्या हम उसे चला सकते हैं? धर्म का तो प्रत्येक अंग उसका अविभाज्य अंग होता है। मेहराब में से एक ईंट निकाल ली जाये, तो मेहराब ढह जाती है। इसी प्रकार धर्म के एक अंग का विच्छेद हो गया, एक इंट निकाल ली गई, तो धर्म की सारी इमारत भर्राकर ढह गई समझिए। इस तरह

वह टिकने की नहीं। दूसरी बातों में पड़कर हम इतने अन्धे हो गये हैं कि यह देखते ही नहीं कि हिन्दू समाज कितना पिछड़ा पड़ा है। मेरे-जैसा आँख वाला तो हिन्दू-समाज की यह हालत देख रहा है। इसका अर्थ कोई यह न समझे कि हिन्दू मुसलमानों से आगे बढ़ जायें, उनसे अधिक शक्तिशाली हो जायें। मैं हरगिज यह नहीं चाहता। मैं सैकड़ों बार यह कह चुका हूँ कि हिन्दू अगर अपनी इतनी आत्म-शुद्धि कर लेंगे तो हमारी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो जायेंगी, और हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी सम्प्रदायों के बीच आज जो वैमनस्य मौजूद है

उसे भी हम दूर कर सकेंगे। यह कितनी सुन्दर बात है। यह पोषक है, नाशक नहीं। पर यह तभी हो सकता है जब हमारे हरिजन सेवक शुद्ध चरित्रवान होंगे। उनका हृदय शुद्ध न होगा, वे निःस्वार्थ न होंगे, तो वे धर्म की सेवा कर ही नहीं सकते। यदि काठियावाड़ में ऐसे सेवक तैयार हो जाये तो यहाँ जो अस्पृश्यता का बाघ या दानव फूल-फल रहा है, वह अवश्य नष्ट हो जायेगा।

(हरिजनबन्धु- 8.7.1934)

कस्तूरबा के अन्तिम संस्कार के सम्बन्ध में सरकार से निवेदन

(1.) शव मेरे पुत्रों और सम्बन्धियों को सौंप दिया जाये, जिसका मतलब यह है कि अन्त्येष्टि-क्रिया सार्वजनिक रूप से होगी, जिसमें सरकार की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं होगा।

(2.) यदि यह सम्भव न हो तो अन्तिम संस्कार उसी तरह किया जाये जिस तरह महादेव देसाई का किया गया था। यदि सरकार दाह-संस्कार के अवसर पर केवल सम्बन्धियों को ही उपस्थित रहने दे तो मैं यह कृपा केवल इसी शर्त पर स्वीकार करूंगा कि सभी मित्रों को, जो मेरे लिए सम्बन्धियों के तुल्य ही हैं, उपस्थित रहने दिया जाये।

(3.) यदि सरकार को यह भी मान्य न हो तो जिन लोगों को कस्तूरबा को देखने के लिए आने दिया गया है उन सबको मैं विदा कर दूंगा और केवल कैम्प के निवासी (नजरबन्द लोग) ही दाह-संस्कार के अवसर पर उपस्थित रहेंगे।

मैं इस बातके लिए बहुत फिक्रमन्द रहा हूँ-और इसके आप साक्षी होंगे -कि अपनी जीवन-संगिनी की इस अत्यन्त कठिन बीमारी से कोई राजनीतिक लाभ न उठाऊँ। किन्तु मैंने हमेशा यह चाहा है कि सरकार जो कुछ भी करे शालीनता से करे। लेकिन कहना पड़ेगा कि अबतक शालीनता का अभाव ही रहा है। यह आशा रखना कोई बहुत बड़ी बात तो न होगी कि अब रोगिणी का देहान्त हो जाने पर सरकार अन्त्येष्टि से सम्बन्धित जो निर्णय करे वह शालीनतापूर्वक किया जायेगा ।

(22 फरवरी 1944 को शाम 7.35 पर कस्तूरबा गांधी का देहान्त हो गया। साधन-सूत्र में प्यारेलाल ने बताया है कि "22 फरवरी, 1944 को रात में 8 बजकर 7 मिनट पर जेल-महानिरीक्षक ने सरकार की ओर से कस्तूरबा की अन्त्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में गांधीजी से उनके विचार पूछे थे। गांधीजी द्वारा बोलकर लिखाया गया उत्तर उन्होंने लिपिबद्ध कर लिया। महादेव देसाई की मृत्यु 15 अगस्त, 1942 को हुई थी। उनका दाह-संस्कार आगाखाँ पैलेस के अहाते में ही हुआ था और अग्नि-संस्कार स्वयं गांधीजी ने किया था।)

भाषण

देश के विकास का माध्यम है खेल

आज दुनिया कह रही है, 21वीं सदी भारत की सदी है।... जैसे हमारे खिलाड़ी हमेशा बड़े लक्ष्य लेकर चलते हैं, वैसे ही हमारा देश भी बड़े संकल्प लेकर आगे बढ़ रहा है।

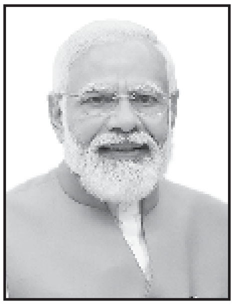

श्री नरेंद्र मोदी

देवभूमि आज युवा ऊर्जा से और दिव्य हो उठी है। बाबा केदार, बद्रीनाथ जी, मां गंगा के शुभाशीष के साथ, आज नेशनल गेम्स शुरू हो रहे हैं। ये वर्ष उत्तराखंड के निर्माण का 25वां वर्ष है। इस युवा राज्य में, देश के कोने-कोने से आए हजारों युवा अपना सामर्थ्य दिखाने वाले हैं। एक भारत-श्रेष्ठ भारत की बड़ी सुंदर तस्वीर यहां दिख रही है। नेशनल गेम्स में इस बार भी कई देसी पारंपरिक खेलों को शामिल किया गया है। इस बार के नेशनल गेम्स, एक प्रकार से ग्रीन गेम्स भी हैं। इसमें environment friendly चीजों का काफी इस्तेमाल हो रहा है। नेशनल गेम्स में मिलने वाले सभी मेडल और ट्रॉफियां भी ई-वेस्ट से बनी हैं। मेडल जीतने वाले खिलाड़ियों के नाम पर यहां एक पौधा भी लगाया जाएगा। ये बहुत ही अच्छी पहल है। मैं सभी खिलाड़ियों को, बेहतरीन प्रदर्शन के लिए शुभकामनाएं देता हूं। मैं धामी जी और उनकी पूरी टीम को, उत्तराखंड के हर नागरिक को इस शानदार आयोजन के लिए बधाई देता हूं।

हम अक्सर सुनते हैं, सोना तप कर खरा होता है। हम खिलाड़ियों के लिए भी ज्यादा से ज्यादा मौके बना रहे हैं, ताकि वे अपने सामर्थ्य को और निखार सकें। आज साल भर में कई टूर्नामेंट्स आयोजित किए जा रहे हैं। खेलो इंडिया सीरीज में कई सारे नए टूर्नामेंट्स जोड़े गए हैं। खेलो इंडिया यूथ गेम्स की वजह से यंग प्लेयर्स को आगे बढ़ने का मौका मिला है यूनिवर्सिटी गेम्स, यूनिवर्सिटी के स्टूडेंट्स को नए अवसर दे रहे हैं। खेलो इंडिया पैरा गेम्स से पैरा एथलीट्स की परफॉर्मेंस नए-नए अचीवमेंट कर रही है। अभी कुछ दिन पहले ही लद्दाख में खेलो इंडिया विंटर गेम्स का पांचवां एडिशन शुरू हो चुका है। पिछले साल ही हमने बीच गेम्स का आयोजन किया था।

हम अक्सर सुनते हैं, सोना तप कर खरा होता है। हम खिलाड़ियों के लिए भी ज्यादा से ज्यादा मौके बना रहे हैं, ताकि वे अपने सामर्थ्य को और निखार सकें। आज साल भर में कई टूर्नामेंट्स आयोजित किए जा रहे हैं। खेलो इंडिया सीरीज में कई सारे नए टूर्नामेंट्स जोड़े गए हैं। खेलो इंडिया यूथ गेम्स की वजह से यंग प्लेयर्स को आगे बढ़ने का मौका मिला है यूनिवर्सिटी गेम्स...।

ऐसा नहीं है कि ये सारे काम सिर्फ सरकार ही करा रही है। आज भाजपा के सैकड़ों सांसद नए टैलेंट को आगे लाने के लिए अपने क्षेत्रों में सांसद खेलकूद स्पर्धा करा रहे हैं। मैं भी काशी का सांसद हूं, अगर मैं सिर्फ अपने संसदीय क्षेत्र की बात करूं, तो सांसद खेल प्रतियोगिता में हर साल काशी संसदीय क्षेत्र में करीब ढाई लाख युवाओं को खेलने का, खिलने का

मौका मिल रहा है। यानि देश में खेलों का एक खूबसूरत गुलदस्ता तैयार हो गया है, जिसमें हर सीजन में फूल खिलते हैं, लगातार टूर्नामैंट होते हैं।

हम स्पोर्ट्स को भारत के सर्वांगीण विकास का एक प्रमुख माध्यम मानते हैं। जब कोई देश स्पोर्ट्स में आगे बढता है, तो देश की साख भी बढ़ती है, देश का प्रोफाइल भी बढ़ता है। इसलिए, आज स्पोर्ट्स को भारत के विकास से जोड़ा जा रहा है। हम इसे भारत के युवाओं के आत्मविश्वास से जोड़ रहे हैं। आज भारत, दुनिया की तीसरी बड़ी आर्थिक ताकत बनने की ओर अग्रसर है, इसमें स्पोर्ट्स इकोनॉमी का बड़ा हिस्सा हो, ये हमारा प्रयास है। आप जानते हैं, किसी स्पोर्ट्स में सिर्फ एक खिलाड़ी ही नहीं खेलता, उसके पीछे एक पूरा इकोसिस्टम होता है। कोच होते हैं, ट्रेनर होते हैं, न्यूट्रिशन और फिटनेस पर ध्यान देने वाले लोग होते हैं, डॉक्टर होते हैं, इक्विपमेंट्स होते हैं। यानि इसमें सर्विस और मैन्युफैक्चरिंग, दोनों के लिए स्कोप होता है। ये जो अलग-अलग स्पोर्ट्स का सामान पूरी दुनिया के खिलाड़ी यूज करते हैं, भारत उनका क्वालिटी मैन्युफेक्चरर बन रहा है। यहां से मेरठ ज्यादा दूर नहीं है। वहां स्पोर्ट्स का सामान बनाने वाली, 35 हजार से ज्यादा छोटी-बड़ी फैक्ट्रियां हैं। इनमें तीन लाख से अधिक लोग काम कर रहे हैं। ये इकोसिस्टम देश के कोने-कोने में बने, आज देश इसके लिए काम कर रहा है।

कुछ समय पहले मुझे दिल्ली में अपने आवास पर ओलंपिक्स टीम से मिलने का अवसर मिला। बातचीत के दौरान एक साथी ने, पीएम की नई परिभाषा बताई थी। उन्होंने कहा कि देश के खिलाड़ी मुझे पीएम यानि प्राइम मिनिस्टर नहीं, बल्कि परम मित्र मानते हैं। आपका ये विश्वास ही मुझे ऊर्जा देता है। मेरा आप सभी के टैलेंट पर, आपके सामर्थ्य पर पूरा भरोसा है, हमारी पूरी कोशिश है, आपका सामर्थ्य बढ़े, आपके खेल में और निखार आए। बीते 10 सालों में देखिए, आपके टैलेंट को सपोर्ट करने पर हमने निरंतर फोकस किया है। 10 साल पहले स्पोर्ट्स का जो बजट था, वो आज तीन गुना से ज्यादा हो चुका है। TOPS स्कीम के तहत ही देश के दर्जनों खिलाड़ियों पर सैकड़ों करोड़ रुपए का निवेश किया जा रहा है। खेलो इंडिया प्रोग्राम के तहत देशभर में आधुनिक स्पोर्ट्स इंफ्रास्ट्रक्चर बनाया जा रहा है। आज स्कूल में भी स्पोर्ट्स को मेनस्ट्रीम किया गया है। देश की पहली स्पोर्ट्स यूनिवर्सिटी भी मणिपुर में बन रही है।

सरकार के इन प्रयासों का नतीजा हम ग्राउंड पर देख रहे हैं, मेडल टैली में दिखाई दे रहे हैं। आज हर इंटरनेशनल इवेंट में भारतीय खिलाड़ी अपना परचम लहरा रहे हैं। ओलंपिक्स और पैरालंपिक्स में, हमारे खिलाड़ियों ने कितना अच्छा प्रदर्शन किया है। उत्तराखंड से भी कितने ही खिलाड़ियों ने मेडल जीते हैं। मुझे खुशी है कि बहुत से मेडल विनर आज आपका हौसला बढ़ाने के लिए यहां इस वेन्यू पर भी आए हैं।

हॉकी में पुराने गौरवशाली दिन वापस लौट रहे हैं। अभी कुछ दिन पहले ही हमारी खो-खो टीम ने वर्ल्ड कप जीता है। हमारे गुकेश डी. ने विश्व शतरंज चैंपियनशिप का खिताब जीता, तो दुनिया हैरान रह गई। कोनेरू हम्पी, महिला विश्व रैपिड शतरंज चैंपियन बनीं, ये सफलता दिखाती है कि भारत में कैसे स्पोर्ट्स अब सिर्फ Extra Curricular Activity नहीं रह गया है। अब हमारे युवा Sports को प्रमुख Career Choice मानकर काम कर रहे हैं।

आज भारत, दुनिया की तीसरी बड़ी आर्थिक ताकत बनने की ओर अग्रसर है, इसमें स्पोर्ट्स इकोनॉमी का बड़ा हिस्सा हो, ये हमारा प्रयास है। आप जानते हैं, किसी स्पोर्ट्स में सिर्फ एक खिलाड़ी ही नहीं खेलता, उसके पीछे एक पूरा इकोसिस्टम होता है। कोच होते हैं, ट्रेनर होते हैं, न्यूट्रिशन और फिटनेस पर ध्यान देने वाले लोग होते हैं, डॉक्टर होते हैं, इक्विपमेंट्स होते हैं। यानि इसमें सर्विस और मैन्युफैक्चरिंग, दोनों के लिए स्कोप होता है। ये जो अलग-अलग स्पोर्ट्स का सामान पूरी दुनिया के खिलाड़ी यूज करते हैं, भारत उनका क्वालिटी मैन्युफेक्चरर बन रहा है।...

जैसे हमारे खिलाड़ी हमेशा बड़े लक्ष्य लेकर चलते हैं, वैसे ही, हमारा देश भी बड़े संकल्प लेकर आगे बढ़ रहा है। आप सभी जानते हैं कि भारत, 2036 ओलंपिक्स की मेजबानी के लिए पूरा जोर लगा रहा है। जब भारत में ओलंपिक होगा, तो वो भारत के स्पोर्ट्स को एक नए आसमान पर ले जाएगा। ओलंपिक्स सिर्फ एक खेल का आयोजन भर नहीं होता, दुनिया के जिन देशों में भी ओलंपिक्स होता है, वहां अनेक सेक्टर्स को गति मिलती है। ओलंपिक्स के लिए जो स्पोर्ट्स इंफ्रास्ट्रक्चर

बनता है, उससे भी रोजगार बनता है। भविष्य में खिलाड़ियों के लिए बेहतर सुविधाएं बनती हैं। जिस शहर में ओलंपिक होता है, वहां नया कनेक्टिविटी इंफ्रास्ट्रक्चर बनता है। इससे कंस्ट्रक्शन से जुड़ी इंडस्ट्री को बल मिलता है, ट्रांसपोर्ट से जुड़ा सेक्टर आगे बढ़ता है। और सबसे बड़ा फायदा तो देश के टूरिज्म को मिलता है। अनेकों नए होटल बनते हैं, दुनिया भर से लोग ओलंपिक्स में हिस्सा लेने और गेम्स देखने आते हैं। इसका पूरे देश को फायदा होता है। जैसे ये नेशनल गेम्स का आयोजन, यहां देवभूमि उत्तराखंड में हो रहा है। यहां जो दर्शक, देश के दूसरे हिस्से से आएंगे, वो उत्तराखंड के दूसरे हिस्सों में भी जाएंगे। यानि स्पोर्ट्स के एक इवेंट से सिर्फ खिलाड़ियों को ही फायदा नहीं होता, बल्कि बहुत से अन्य सेक्टर्स की इकोनॉमी भी इससे ग्रो करती है।

उत्तराखंड में पहली बार, इतने बड़े पैमाने पर इस तरह के नेशनल इवेंट का आयोजन हो रहा है। ये अपने आप में बहुत बड़ी बात है। इससे यहां रोजगार के भी ज्यादा अवसर बनेंगे, यहां के युवाओं को यहीं पर काम मिलेगा। उत्तराखंड को अपने विकास के लिए और भी नए रास्ते बनाने ही होंगे। अब जैसे उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था सिर्फ चार धाम यात्राओं पर निर्भर नहीं रह सकती। सरकार आज सुविधाएं बढ़ाकर इन यात्राओं का आकर्षण लगातार बढ़ा रही है। हर सीजन में श्रद्धालुओं की संख्या भी नए रिकॉर्ड बना रही है। लेकिन इतना काफी नहीं है।

आज दुनिया कह रही है, 21वीं सदी भारत की सदी है। और यहां बाबा केदार के दर्शन के बाद मेरे मुंह से, मेरे दिल से अचानक ही निकला था– ये उत्तराखंड का दशक है। मुझे खुशी है कि उत्तराखंड तेजी से प्रगति कर रहा है। कल ही उत्तराखंड देश का ऐसा राज्य बना है, जिसने यूनिफॉर्म सिविल कोड, समान नागरिक संहिता लागू की, मैं कभी–कभी इसे सेक्युलर सिविल कोड भी कहता हूं। समान नागरिक संहिता, हमारी बेटियाँ, माताओं–बहनों के गरिमापूर्ण जीवन का आधार बनेगी। यूनिफॉर्म सिविल कोड से लोकतंत्र की स्पिरिट को मजबूती मिलेगी, संविधान की भावना मजबूत होगी। और मैं आज यहां स्पोर्ट्स के इस इवेंट में हूं, तो इसे मैं आपसे जोड़कर भी देखता हूं। स्पोर्ट्स–मैन–शिप हमें भेदभाव की हर भावना से दूर करती है, हर जीत, हर मेडल के पीछे का मंत्र होता है– सबका प्रयास। स्पोर्ट्स से हमें टीम भावना के साथ खेलने की प्रेरणा मिलती है। यही भावना यूनिफॉर्म सिविल कोड की भी है। किसी से भेदभाव नहीं, हर कोई बराबर। मैं उत्तराखंड की भाजपा सरकार को इस ऐतिहासिक कदम के लिए बधाई देता हूं।

उत्तराखंड एक प्रकार से मेरा दूसरा घर है। मेरी भी इच्छा है कि मैं शीतकालीन यात्राओं का हिस्सा बनूं। मैं देशभर के युवाओं से भी कहूंगा कि सर्दियों में जरूर उत्तराखंड आएं। तब यहां श्रद्धालुओं की संख्या भी उतनी नहीं होती। आपके लिए एडवेंचर से जुड़ी एक्टिविटीज की बहुत संभावना यहां पर है। आप सभी एथलीट्स भी नेशनल गेम्स के बाद इनके बारे में जरूर पता करिएगा और हो सके तो देवभूमि के आतिथ्य का और ज्यादा दिनों तक आनंद उठाइएगा।

आप सभी अपने–अपने राज्यों को रिप्रजेंट करते हैं। आने वाले दिनों में आप यहां कड़ी स्पर्धा करेंगे। अनेक नेशनल रिकॉर्ड टूटेंगे, नए रिकॉर्ड बनेंगे। आप पूरे सामर्थ्य के अनुसार अपना शत–प्रतिशत देंगे, लेकिन मेरा आपसे कुछ आग्रह भी है। ये नेशनल गेम्स सिर्फ खेल की ही स्पर्धा नहीं है, ये एक भारत श्रेष्ठ भारत का भी एक मजबूत मंच है। ये भारत की विविधता को सेलिब्रेट करने का आयोजन है। आप कोशिश करें, आपके मेडल में, भारत की एकता और श्रेष्ठता की चमक भी नजर आए। आप यहां से देश के अलग–अलग राज्यों की भाषा, खान–पान, गीत–संगीत की बेहतर जानकारी लेकर जाएं। मेरा एक आग्रह स्वच्छता को लेकर भी है। देवभूमि के निवासियों के प्रयासों से उत्तराखंड प्लास्टिक मुक्त बनने की दिशा में काफी मेहनत कर रहा है, आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा है। प्लास्टिक मुक्त उत्तराखंड का संकल्प, आपके सहयोग के बिना पूरा नहीं हो सकता। इस अभियान को सफल बनाने में जरूर अपना योगदान दें।

आप सभी फिटनेस का महत्व समझते हैं। इसलिए मैं आज एक ऐसी चुनौती की बात भी करना चाहता हूं, जो बहुत जरूरी है। आंकड़े कहते हैं कि हमारे देश में Obesity की, मोटापे की समस्या तेजी से बढ़ रही है। देश का हर

एज ग्रुप, और युवा भी इससे बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं। और ये चिंता की बात इसलिए भी है, क्योंकि Obesity, मोटापे की वजह से Diabetes, Heart disease जैसी बीमारियों का रिस्क बढ़ रहा है। मुझे संतोष है कि आज देश Fit India Movement के माध्यम से फिटनेस और Healthy Lifestyle के लिए जागरूक हो रहा है। ये नेशनल गेम्स भी, हमें ये सिखाते हैं कि Physical Activity, Discipline और Balanced Life कितनी जरूरी है। आज मैं देशवासियों से कहूंगा, दो चीजों पर जरूर फोकस करें। ये दो चीजें, Exercise और Diet से जुड़ी हैं। हर दिन, थोड़ा सा समय निकालकर एक्सरसाइज जरूर करिए। टहलने से लेकर वर्क-आउट करने तक, जो भी संभव हो अवश्य कीजिए। दूसरा ये कि अपनी Diet पर फोकस कीजिए। Balanced Intake पर आपका फोकस हो और खाना न्यूट्रिशियस हो, पौष्टिक हो।

एक और चीज हो सकती है। अपने खाने में अन-हेल्दी फैट, तेल को थोड़ा कम करें। अब जैसे हमारे सामान्य घरों में, महीने की शुरुआत में राशन आता है। अब तक अगर आप हर महीने दो लीटर खाने का तेल घर लाते थे, तो इसमें कम से कम 10 प्रतिशत की कटौती करिए। हम हर दिन जितना तेल यूज करते हैं, उसको 10 परसेंट कम करें। ये Obesity से बचने के कुछ रास्ते हमें खोजने पड़ेंगे। ऐसे छोटे-छोटे कदम उठाने से आपकी हेल्थ में बहुत बड़ा चेंज आ सकता है। और यही तो हमारे बड़े-बुजुर्ग करते थे। वो ताजी चीजें, नैचुरल चीजें, Balanced Meals खाते थे। एक स्वस्थ तन ही, स्वस्थ मन और स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। मैं राज्य सरकारों, स्कूलों, ऑफिसों और Community Leaders से भी कहूंगा कि वो इसे लेकर जागरूकता फैलाएं, आप सभी को तो बहुत सारा प्रैक्टिकल एक्सपीरियंस है। मैं चाहता हूं कि आप सही Nutrition की जानकारी निरंतर लोगों तक पहुंचाएं। आइए, हम सब मिलकर एक 'फिट इंडिया' बनाएं, इसी आह्वान के साथ।

वैसे मेरा दायित्व होता है नेशनल गेम्स की शुरुआत करवाने का, लेकिन मैं आज आप सबको जोड़कर करना चाहता हूं। तो इस गेम्स के शुभारंभ के लिए आप अपने मोबाइल के फ्लैश लाइट चालू कीजिए, आप सब। आप सब अपने मोबाइल के फ्लैश लाइट चालू कीजिए। सबके-सबके मोबाइल के फ्लैश लाइट चालू हों, आप सबके मोबाइल के फ्लैश लाइट चालू हों। आप सबके साथ मिलकर मैं 38वें नेशनल गेम्स की शुरुआत की घोषणा करता हूं। एक बार फिर आप सभी को बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

(देहरादून, उत्तराखंड में 38वें राष्ट्रीय खेलों के उद्घाटन समारोह में प्रधानमंत्री के भाषण के अंश)

व्याख्यान

राजेंद्र बाबू उस मिट्टी के बने थे, जिसे भारत कहा जाता है

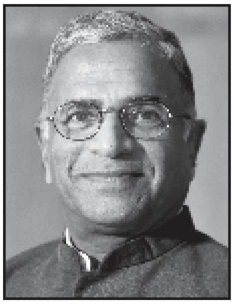

हरिवंश

राजेंद्र बाबू के पूर्वज चांदी के कटोरे में दूध-चावल खाने वाले नहीं थे। बाढ़ के कारण विस्थापित होकर जीरादेई गांव गये। वहीं 03 दिसंबर, 1884 को राजेंद्र बाबू का जन्म हुआ। राजेंद्र बाबू की मेधा-स्मरण शक्ति, विलक्षणता की कहानियों को बचपन से ही गांव में सुना। बाद में किताबों के जरिये उन्हें और जानने का मौका मिला। छात्र के रूप में मेधावी राजेंद्र बाबू, कलकत्ता विश्वविद्यालय की एण्ट्रेस परीक्षा के टॉपर रहे। उनके विद्यार्थी जीवन का चर्चित प्रसंग है। उनकी कापी देखकर परीक्षक का मंतव्य था, परीक्षार्थी, परीक्षक से भी उच्च कोटि का है। पेशेवर वकील के रूप में प्रखर, सरोकारी व संवेदनशील। शिक्षक की भूमिका में विद्वता संपन्न। बाढ़-भूकंप-अकाल में सबसे पहले अग्रिम मोर्चे, 'ग्राउंड जीरो' पर, जाकर लोगों की सेवा करना। मदद करना। लोक सेवा साहित्य, संस्कृति से सदैव सरोकार रहा। अंग्रेजी दैनिक 'सर्चलाइट' व हिंदी साप्ताहिक 'देश' की स्थापना में सक्रिय सहयोग। बिहारी विद्यार्थी क्लब की स्थापना की।

कदकाठी सामान्य। पर विराट बहुआयामी व्यक्तित्व। मानवीय गरिमा, मूल्य-मर्यादा, कर्मठता, सादगी, ईमानदारी, करूणा, त्याग, सेवा की साकार जीवंत व संवेदनशील मूरत।

स्वतन्त्रता संग्राम के प्रखर सेनानी, राष्ट्रीय कांग्रेस व संविधान-सभा के अध्यक्ष, फिर अंतरिम सरकार में केंद्रीय मंत्री। गांधी के 'जेनुइन उत्तराधिकारी'। देश के पहले राष्ट्रपति के रूप में उनका उल्लेखनीय योगदान। पर, सच यह भी है कि अभी भी देश कम जान सका है, राजेंद्र बाबू के बारे में। या फिर कहिए कि कम बताया गया है, उनके बारे में।

राजेंद्र बाबू की मेधा-स्मरण शक्ति, विलक्षणता की कहानियों को बचपन से ही गांव में सुना। बाद में किताबों के जरिये उन्हें और जानने का मौका मिला। छात्र के रूप में मेधावी राजेंद्र बाबू, कलकत्ता विश्वविद्यालय की एण्ट्रेस परीक्षा के टॉपर रहे। उनके विद्यार्थी जीवन का चर्चित प्रसंग है। उनकी कापी देखकर परीक्षक का मंतव्य था...।

मशहूर कवि, लेखक हरिवंश राय बच्चन जी ने राजेंद्र प्रसाद स्मृति व्याख्यान में कहा था– 'मेरी एक कल्पना है, महात्मा गांधी की आत्मकथा 1921 पर समाप्त हो गई थी। यदि उसमें उन्हें (राजेंद्र बाबू को) केवल चार बार याद किया गया था, तो इसे अपर्याप्त नहीं कह सकते। उस समय तक उनका विशेष कार्य चंपारण आंदोलन तक सीमित था। नेहरू जी की आत्मकथा 1936 में समाप्त हुई। इन 15 वर्षों में राजेंद्र बाबू का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक ही नहीं हो गया था वह बहुत ही महत्वपूर्ण भी था। 1934 में उन्हें कांग्रेस का सभापति बनाया गया था, जो राष्ट्र नेताओं के लिए उन दिनों सबसे बड़ा सम्मान गिना जाता था। नेहरू जी की आत्मकथा में राजेंद्र बाबू का नाम केवल एक बार आता है। नेहरू जी की आत्मकथा में गांधी जी का 116 बार। गांधी जी के कांग्रेस में आने के बाद से 1936 तक का, उस समय तक का, जो प्रामाणिक लेखा-जोखा था वह इन्हीं दोनों आत्मकथाओं-महात्मा गांधी के 'एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ' व जवाहरलाल नेहरू जी के 'ऑटोबायोग्राफी' या 1935 में प्रकाशित पट्टाभि सीतारामैया के 'कांग्रेस के इतिहास' में मिलता है। और उनमें निश्चय ही राजेंद्र बाबू के कार्यकलापों के प्रति न्याय नहीं किया गया था।'

कलकत्ता में पढ़ाई के दौरान राजेंद्र बाबू की गोखले जी से मुलाकात हुई। वह सर्वेंट सोसाइटी ऑफ इंडिया का गठन कर चुके थे। सोसाइटी से जोड़ने के लिए कुछ होनहार नौजवानों को तलाश रहे थे। कलकत्ता के वरिष्ठ बैरिस्टर परमेश्वर लाल ने गोखले को राजेंद्र बाबू के बारे में बताया। राजेंद्र बाबू को गोखले से मिलने के लिए कहा गया। वह मिलने गये।

गोखले ने राजेंद्र बाबू से कहा-'हो सकता है, तुम्हारी वकालत खूब चल निकले, बहुत रुपये तुम पैदा कर सको। बहुत आराम और ऐश इशारत में दिन बिताओ। बड़ी कोठी, घोड़ा-गाड़ी आदि हो जाए। तुम पढ़ने में अच्छे हो इसलिए तुम्हारे लिए यह बहुत मुश्किल नहीं।'

गोखले आगे बोले-'मेरे सामने भी यही सवाल आया था। ऐसी ही उमर में। मैं भी एक साधारण गरीब का बेटा था। घर के लोगों को मुझसे बड़ी उम्मीदें थीं। उन्हें लगता था कि मैं पढ़कर तैयार हो जाउंगा, रुपये कमाउंगा और सबको सुखी बना सकूंगा। पर, मैंने उन सबकी आशाओं पर पानी फेरकर देश सेवा का व्रत लिया। मेरे भाई इतने दुखी हुए कि वे मुझसे बोले तक नहीं। हो सकता है, यह सब तुम्हारे साथ भी हो। पर, विश्वास रखना, एक दिन सब लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।'

गोखले जी ने कहा कि जल्दबाजी में निर्णय नहीं लेना। आराम से सोचना। यह कहकर गोखले चले गये।

पर, राजेंद्र बाबू के मन में उथल-पुथल चलता रहा। उनके बड़े भाई साथ रहते थे। कई बार सोचा कि सब कुछ भाई को बता दें। लेकिन साहस नहीं जुटा पाये। इस बीच कोर्ट-कचहरी जाना छोड़ दिया। खाने-पीने में उनका जी नहीं लगता था।

राजेंद्र बाबू ने लंबी चिट्ठी लिखी। पर, चिट्ठी देने का साहस नहीं जुटा पाये। भाई बाहर टहलने गये। राजेंद्र बाबू ने वह चिट्ठी भाई के बिस्तर पर रख दी। खुद भी टहलने चले गये। राजेंद्र बाबू के भाई आये। चिट्ठी देखी। बाहर निकले। राजेंद्र बाबू को देखा। वह जोर-जोर से रोने लगे। दोनों भाई गले लगकर बहुत देर तक रोते रहे।

दोनों भाई गांव आये। इस बीच राजेंद्र बाबू ने अपनी पत्नी राजवंशी देवी को एक चिट्ठी कैथी लिपि में लंबी चिट्ठी लिखी। घर की चिट्ठी कैथी लिपि में, भोजपुरी में लिखते थे। पत्नी को जब लिखते थे। उसके कोने पर लिखा होता था- 'अंगना की चिट्ठी'। उस चिट्ठी को मृत्युंजय बाबू ने अपनी किताब 'पुण्य स्मरण' में उद्धृत किया है।

राजेंद्र बाबू अपनी पत्नी से अपने जीवन और भविष्य की योजनाओं के बारे में चिठ्ठी में बताते हैं। बताते हैं, कि धन कमाने में रुचि नहीं है। इसके बजाय देश सेवा में अपना समय लगाना चाहता हूं। वह अपनी पत्नी से पूछते हैं कि क्या वह गरीबी में रहने के लिए तैयार होंगी? यदि मैं धन नहीं अर्जित करूं, तो तुम्हें मेरे साथ निर्धन की तरह रहना होगा। गरीबों का भोजन, गरीबों का पहनावा, गरीब हृदय से जीना होगा।

मैंने इस पर विचार किया है और इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं होगा, किंतु मैं तुम्हारे मन की बात जानना चाहता हूं। अपनी पत्नी को बताते हैं, घर-परिवार में रहकर ही देश की सेवा करना चाहता हूं। संन्यास नहीं लेना चाहता। यह लंबी चिट्ठी है। वह अपनी पत्नी से कहते हैं कि जल्द ही घर आकर और सारी बातें कहेंगे। (Classic Letter, हर स्कूल में पढ़ाया जाना चाहिए)

राजेंद्र बाबू ने हाईकोर्ट में वकालत शुरू की। पहले कलकत्ता और फिर पटना में। अपने पेशे में चमके। उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है-'गरीब मवक्किलों के मुकदमों में कोई दूसरा वकील नहीं होता था, अक्सर उन्हें ही बहस करनी होती थी।' पर, अपने मुवक्किलों को बरजते थे कि झूठे मुकदमे न उठाएं।

एक प्रसंग है, भवानी दयाल संन्यासी के एक रिश्तेदार थे। बड़े मुकदमेबाज। वह जानबूझ कर मुकदमा करते। वकीलों के सहारे केस भी जीतते। संन्यासीजी के रिश्तेदार राजेंद्र बाबू के पास अपना मामला लेकर गये। राजेंद्र बाबू ने उन्हें समझा-बुझाकर लौटा दिया कि झूठे केस नहीं करना चाहिए। किसी के खिलाफ इस तरह का काम नहीं करना चाहिए। रिश्तेदार राजेंद्र बाबू से मिलकर लौटे। संन्यासीजी को कोसने लगे कि आप वकील के पास भेजे थे कि किसी संत के पास।

चम्पारण सत्याग्रह के कुछ वर्षों पहले ही राजेंद्र बाबू गांधी जी के सम्पर्क में आये। फिर देश को आजादी मिलने तक गांधीजी के जितने आन्दोलन चले, उन सबमें राजेंद्र बाबू का कैसा सक्रिय सहयोग रहा है? यह कहने की जरूरत नहीं है। काका साहब कालेलकर अपनी किताब, 'जंगम विद्यापीठ' में बताते हैं कि वह गांधी के अंतिम चिराग थे।

राजेंद्र बाबू गांधी के अंतिम चिराग ही नहीं, अजातशत्रु थे। सच्चरित्रता, सरलता, सौम्यता और सौजन्यता की प्रतिमूर्ति। इसका प्रभाव उनके विरोधियों तक पर रहा।

कांग्रेस संगठन पर जब कोई संकट आता, आंतरिक हो या बाहरी, सब की निगाहें राजेंद्र बाबू पर रहतीं। बिहार भूकंप में मुल्क ने उनकी संगठन शक्ति व आदर्श सेवा देखी। सर्वसम्मति से कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए उनके नाम की अनुशंसा हुई। अखिल भारतीय कांग्रेस के बंबई अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया। फिर 1939 में जब सुभाष बाबू ने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया, कांग्रेस की बागडोर उनके पास वापस आ गई। आखिरी बार 1947 में जब आचार्य कृपलानी ने कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा दिया, तो राजेंद्र बाबू को यह पद संभालना पड़ा।

राजेंद्र बाबू उस समय भारत सरकार के कृषि एवं खाद्य मंत्री थे। संविधान सभा के अध्यक्ष भी। उन्होंने सभी पद एक साथ लेना उचित न समझा। कृषि एवं खाद्य मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया।

साथियों से सौम्य और सरल व्यवहार। उनकी सादगी व सरलता से संबंधित अनेक प्रसंग हैं। एक बार वे बिहार के किसी सरकारी अफसर से मिलने गए। उन्होंने अपने नाम की एक चिट चपरासी के हाथ उन अफसर महोदय को भेजी। उस समय जाड़े की रात थी। अफसर ने उस चिट की ओर ध्यान नहीं दिया। कुछ समय बीतने पर उस अफसर ने वह चिट देखी। सकपका कर बाहर निकले। उन्होंने राजेंद्र बाबू को अपने चपरासियों के साथ बंगले के अहाते में अलाव तापते हुए पाया।

एक और घटना। वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के किसी अधिवेशन में गए। गाड़ी छूट गई थी। रात का समय था। दूसरी गाड़ी से पहुंचे। स्टेशन पर कोई कांग्रेसी कार्यकर्ता नहीं था। अपना छोटा-सा बिस्तर बगल में दबाए हुए, अकेले पैदल ही कांग्रेस कैम्प पहुंचे, जो स्टेशन से कुछ मील पर था।

भारतीय राजनीति में दिलचस्पी रखेनवालों के लिए यह किताब पढ़ने का विनम्र आग्रह करूंगा। दुर्गा दास (25 नवंबर, 1900- 17 मई, 1974) 'एसोसिएटेड प्रेस आफ इंडिया' के संपादक रहे। आजादी के कालखंड के

सभी बड़े और महत्वपूर्ण नेताओं से दुर्गा दास जी का निजी और आत्मीय संबंध रहा। 'इंडिया: फ्रॉम कर्जन टू नेहरू आफ्टर' उनकी चर्चित किताब है। उस दौर की राजनीति को समझने के लिए सबसे प्रामाणिक दस्तावेज। इसकी भूमिका देश के पूर्व राष्ट्रपति जाकिर हुसैन जी ने लिखी है। पुस्तक में एक अध्याय है, 'प्रेसिडेंट एंड प्राइम मिनिस्टर।' मूल रूप से अंग्रेजी में लिखित पुस्तक के इस अध्याय को पढ़ते हुए आपके मन में सवाल आयेंगे कि आजाद भारत के शुरुआती वर्षों में भारत का इतिहास क्या स्वरूप ले रहा था? क्या राजेंद्र बाबू के व्यक्तित्व के साथ न्याय हुआ? वह समादर व सम्मान उन्हें मिला, जिसके वे हकदार थे? इसका प्रामाणिक ब्यौरा, इसमें है।

दुर्गादास ने राष्ट्रपति के रूप में राजेंद्र बाबू के चयन के बारे में बताया है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति के लिए राजेन्द्र प्रसाद के मुकाबले राजगोपालाचारी भी मैदान में थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू जी, राजगोपालाचारी को राष्ट्रपति पद पर चाहते थे। माउंटबेटन के बाद राजगोपालाचारी गवर्नर जनरल रहे थे। राजेन्द्र बाबू, संविधान लागू होने के पहले संविधान सभा के अध्यक्ष थे। नेहरू जी ने राजगोपालाचारी के नाम को स्वीकृति देने के लिए कांग्रेस की एक बैठक बुलायी। पंडित जी ने जब बोलना खत्म किया, तो एक के बाद दूसरे सदस्यों ने राजगोपालाचारी जी से जुड़े प्रसंग उठाये। इसमें मुख्य आरोप 1942 में उनका कांग्रेस से त्यागपत्र व जिन्ना की सन्तुष्टि के प्रयास थे। पंडित जी की स्थिति खराब न हो, इसलिए निर्णय मतदान द्वारा न करके नेहरू और पटेल पर छोड़ दिया गया। नेहरू को प्रसाद का नाम ही चुनना पड़ा।

दुर्गादास ने लिखा है कि पंडित नेहरू ने राजेंद्र बाबू को भी इस बात के लिए तैयार कर लिया था कि वह राजगोपालाचारी को राष्ट्रपति बन जाने दें। प्रसाद के समर्थकों को पता था कि पटेल भी प्रसाद को चाहते हैं। वे पटेल के पास गए। पटेल ने तब हँसते हुए कहा– 'दूल्हा तो भाग गया, बारात कैसे उठेगी?'

वहीं डी.पी. मिश्रा ने अपने मेमॉयर (लिविंग एन एरा: द नेहरू ईपोक, पेज 160) में इसका उल्लेख दूसरी तरह से किया है। डी.पी. मिश्र ने लिखा है कि उनके फोन करके पूछने पर 'कि प्रसाद के मामले में दिल्ली में क्या हो रहा है', पटेल ने मजाक में कहा 'अगर दूल्हा पालकी छोड़कर भाग न जाए तो शादी नक्की' इसका आशय था कि कहीं प्रसाद पीछे न हट जाएँ। प्रसाद के समर्थकों के अनुरोध पर यह तय हुआ कि नेहरू को इस बात के लिए विवश किया जाएगा कि वह प्रसाद के पक्ष में रहें।

केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होने से पहले तक एक तरह से अकेले ही रहे। चाहे वे वकालत में हो या राष्ट्रीय आंदोलन में, उनके साथ परिवार का कोई सदस्य नहीं रहता था। भारत के प्रथम राष्ट्रपति बन कर राष्ट्रपति भवन में आए। अपने निवास आदि की व्यवस्था देखी। उन्हें शयन के लिए एक पलंग दिखाया गया, जो ऊपर स्प्रिंगदार मखमल के आवरण से सुसज्जित था। उन्होंने उसे अपने दाहिने हाथ से ज्योंही उसे दबाया। उनका हाथ उसके स्प्रिंगदार होने के कारण काफी नीचे तक चला गया। उन्होंने उसे लक्ष्य कर कहा–'इस पलंग पर सोनेवाले की वही दशा होगी, जो भरे हुए घी के कनस्तर में कटोरी की होती है। इसपर सोने वाला बिलकुल नीचे चला जाएगा।'

त्याग, कष्ट साध्य और सरल जीवनपद्धति ने उनका व्यक्तित्व बनाया था। आरामदेह पलंग पर सोने और भोग–विलास की सामग्री का उपभोग करने वाला व्यक्तित्व नहीं था। सेठ गोविंददास अपनी किताब में बताते हैं, राजेंद्र बाबू जैसे साधुवृत्ति के व्यक्ति से यह असावधानी कैसे संभव थी? उसे उन्होंने वहां से हटवाकर अपने लिए एक काठ के तख्त (चौकी) की व्यवस्था करने का आदेश दिया। तत्काल एक लकड़ी के तख्त की व्यवस्था की गई। इसपर एक रुई–भरा गद्दा डालकर राजेंद्र बाबू अपने राष्ट्रपति काल में सदा सोते रहे। 'भरतहि होइ न राजु मद विधि हरिहर पद पाय' का पालन करते रहे।

गीता में अनासक्त कर्मयोगी का उल्लेख है। वह साक्षात अनासक्त कर्मयोगी थे। 1962 में, जब राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति भवन छोड़कर पटना के सदाकत आश्रम जा रहे थे, तब उनके उद्गार थे– 'मुझे राष्ट्रपति भवन में रहते हुवे न तो विशेष प्रसन्नता अनुभव होती थी और न ही अब

छोड़ने में कोई दु:ख या विषाद ही हो रहा है।' राजेन्द्र बाबू का जीवन एक विरक्त- योगी-का जीवन रहा। कर्म करते हुए भी वे अनासक्त थे।

राष्ट्रपति भवन में उन्होंने तुलसीदास रचित यह दोहा लगा रखा था-

'हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम नाम,

जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये'

उन्होंने अपने जीवन में इसका पूरा पालन भी किया।

देश और अपने कर्तव्य से वह कैसे बंधे थे? एक प्रसंग है। 25 जनवरी, 1950 में समारोह की रात राजेंद्र बाबू की बहन भगवती देवी का निधन हुआ। वह राष्ट्रपति भवन में उनके साथ ही रहती थीं। भाई-बहनों में सबसे बड़ी। बाल-विधवा। राजेंद्र बाबू से गहरा नेह-छोह-प्रेम था, उन्हें। किसी से भी यह खबर साझा न करते हुए, वे सुबह परेड में उपस्थित हुए। 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस पर राष्ट्रपति समारोह के मुख्य अतिथि स्वरूप परेड की सलामी ली। समारोह समाप्ति के बाद ही अंतिम क्रिया में शामिल हुए।

राजेंद्र बाबू हिंदी, अंग्रेजी, बंगाली और संस्कृत भाषा में सिद्धहस्त थे। पर, मातृभाषा भोजपुरी के प्रति उनका प्रेम हमेशा रहा। चाहे वह राष्ट्रपति भवन में हों या सदाकत आश्रम में, अपने लोगों और दोस्तों से भोजपुरी में ही बात करते थे। भोजपुरी के प्रचार-प्रसार में उनका न सिर्फ खोखला आशीर्वाद रहा, बल्कि उनका सक्रिय सहयोग भी रहा। अपनी मातृभाषा भोजपुरी के वे अनन्य सेवक रहे। भोजपुरी की पहली फिल्म 'हे गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबो' उनके प्रयास से ही बनी।

वह साहित्य, संस्कृति, राजनीति के बीच सेतु रहे। साहित्य में उनकी रुचि इतनी रही कि उन्होंने बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना में अहम भूमिका निभायी। पढ़ने-लिखने का माहौल बने, इसे लेकर वे इतने सचेत और सक्रिय थे कि बिहार के रोहतास जिला के बहुआरा गांव में भवानी दयाल संन्यासी ने जब उन्हें एक लाइब्रेरी और प्रवासी भवन के उदघाटन में बुलाया तो वे बैलगाड़ी से वहां पहुंचे। रास्ता दुरूह और आवागमन का साधन न होने के कारण।

मशहूर पत्रकार अक्षय कुमार जैन की पुस्तक 'याद रही मुलाकातें' में एक घटना की चर्चा है। वे लिखते हैं-'मेरी पुस्तक 'युग पुरुष राम' 1954 में प्रकाशित हुई। उनकी एक प्रति भेंट करने के लिये मैं राष्ट्रपति भवन गया। पुस्तक प्राप्त करते ही उन्होंने तीन बार पुस्तक को सिर से लगाया। कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, 'आप धन्य हैं, जो मर्यादापुरुषोत्तम के चरित्र पर कुछ लिख सके हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम सारे देश के लिए वन्दनीय हैं, उन्होंने जो मर्यादायें स्थापित कीं, उन्हें अपनाकर कोई भी समाज उन्नति कर सकता है। रामकथा को जितना व्यापक बनाया जाये उतना श्रेष्ठ है।'

केएम मुंशी जी ने अपनी किताब-'पिलग्रिमेज टू फ्रीडम' में विस्तार से यह बताया है।

'एक अन्य घटना सोमनाथ मन्दिर में मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा से सम्बन्धित है। जब मूर्ति की स्थापना का समय आया, तो मैंने राजेन्द्र प्रसाद से मुलाकात करके उनसे समारोह सम्पन्न करने के लिए कहा और साथ ही यह भी कि, वे आमन्त्रण तभी स्वीकार करें जब वे अपना आगमन पूर्णत: सुनिश्चित कर सकें। प्रधानमन्त्री से मेरा पत्र-व्यवहार उनके लिये कोई गोपनीय बात न थी। उन्होंने आश्वासन दिया था कि वह आकर मूर्ति की प्रतिस्थापना करेंगे। भले ही इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री जी का जो भी रवैया हो, उन्होंने यह भी कहा कि मैं ऐसा ही एक मस्जिद अथवा चर्च के लिये भी करूंगा, यदि मुझे आमन्त्रण मिलेगा'

यह घोषणा हुई कि राजेंद्र बाबू सोमनाथ मंदिर का उद्घाटन करेंगे। तत्कालीन शीर्षस्थ लोगों ने सोमनाथ जाने पर तीव्र विरोध प्रकट किया। पर राजेंद्र बाबू गये। पर सोमनाथ में उनके द्वारा दिया गया भाषण, सभी पत्रों में प्रकाशित हुआ। किन्तु सरकारी तंत्र के अंगों से उसे हटा दिया गया।

इसकी उन्हें बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। दूसरी पारी के राष्ट्रपति पद की उम्मीदवारी के बारे में तो कहा जाता है कि सबसे बड़ा योगदान मौलाना आजाद का था।

1957 में जब उन्हें हटाकर किसी और को राष्ट्रपति बनाने की बात चली तो मौलाना आजाद ने जवाहरलाल नेहरू को लिखा: 'हमारी आजादी की जद्दोजहद में जिसने अपने-आपको मिटा दिया और दूसरे, जिसे विदेशी सरकार के हाथों सर का खिताब कबूल करने में कोई झिझक नहीं हुई, जमीन-आसमान का फर्क है और इस फर्क का अहसास आपको करना ही होगा।'

वे गांधीजी की इस बात को कि आजादी के बाद कांग्रेस को राजनीतिक दल के बदले एक सेवा संगठन में बदल दिया जाए, बार-बार याद करते थे। ये वे राष्ट्रपति थे जिन्होंने 30 जनवरी, 1959 को लिखा: 'हमने गांधीजी की 11 साल पहले हत्या कर दी थी लेकिन क्या इतनी ही बात है? गांधीजी की तो हम रोज-रोज हत्या कर रहे हैं।'

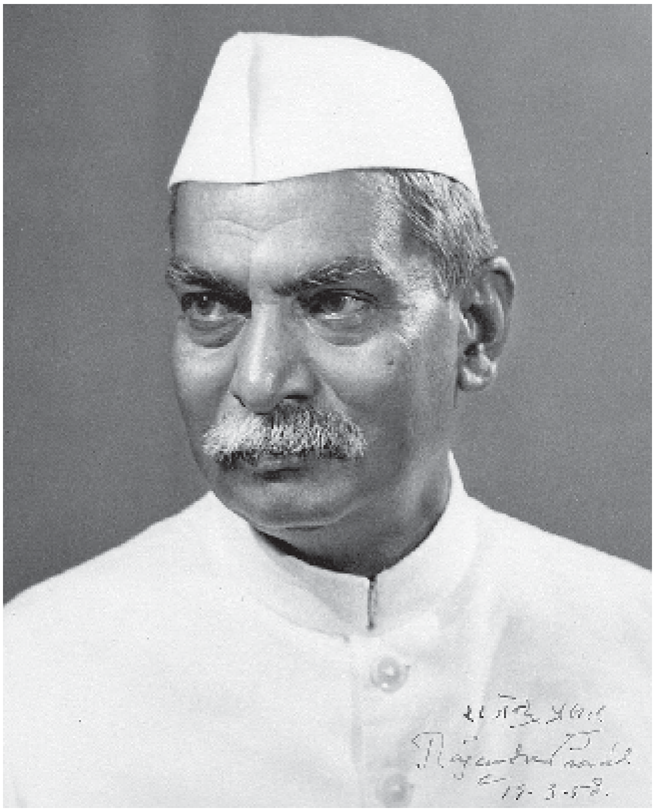

सेठ गोविंददास के अपने समकालीन महापुरुषों से निकट के संबंध रहे है। उनकी स्मृतियों का उन्होंने अपनी किताब 'महापुरुषों के साथ में' उल्लेख किया है- 'राजेंद्र बाबू संविधान सभा के अध्यक्ष थे। मैं उसका सदस्य, तब यह सम्पर्क बहुत बढ़ गया। वह इस कारण से कि भारतीय संस्कृति से सम्बन्ध रखनेवाले जिन प्रश्नों से मेरा अनुराग था उनसे राजेन्द्रप्रसाद जी का भी। मैंने संविधान में भारत का नाम 'भारत' रखवाना चाहा, हिन्दुस्तान नहीं, देश की राजभाषा हिन्दी बनवानी चाही, गोरक्षा-संबंधी एक धारा संविधान में जुड़वानी चाही; मेरे इन सभी प्रयासों में अध्यक्ष के निष्पक्ष पद पर रहते हुए तथा पूर्ण निष्पक्षता रखते हुए भी डाक्टर साहब जो सहायताएं कर सकते थे, उन्होंने सारी सहायता की; उनकी तो यहां तक इच्छा थी कि हमारा संविधान मूल में हिन्दी भाषा में स्वीकृत हो और अंग्रेजी 'भाषा का संविधान उसका अनुवाद माना जाए। पर यह खेद की बात है कि ऐसा नहीं हो सका।'

2 साल 11 महीने 18 दिन के दौरान संविधान सभा 11 सत्रों में लगभग 166 दिन बैठी। देश विषम दौर से गुजर रहा था। बंटवारा हो चुका था। सांप्रदायिक उन्माद चरम पर था। ऐसे में संविधान सभा ने विश्व के सबसे बड़े और व्यापक संविधान का निर्माण बड़ी ही संजीदगी, गरिमा और दूरदर्शिता के साथ किया। यह भी ध्यान रखना होगा कि तत्कालीन भारत की आबादी पूरे यूरोप की आबादी से अधिक थी। जैसा कि राजेंद्र बाबू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में 26 नवंबर 1949 को बताया कि यूरोप की आबादी तो भारत से कम थी, लेकिन यूरोप एक संविधान तो क्या संघ भी नहीं बन पाया। जबकि भारत में अधिक आबादी और अधिक विविधता के साथ अपने इतिहास में पहली बार एक संविधान के तहत पूरे मुल्क को संगठित किया गया।

11 दिसंबर 1946 को संविधान सभा का अध्यक्ष चुने जाने पर सभा को धन्यवाद देते हुए उनका वक्तव्य उस समय की संसदीय मर्यादाओं का बेहतरीन उदाहरण है। सदस्यों को संबोधित करते हुए वह कहते हैं -

''हमको वो ताकत चाहिए कि हम दूसरे की बातों को सिर्फ समझ ही न सकें, बल्कि जहां तक हो उन के दिलों में घुस कर खुद महसूस कर सकें और इस तरह से काम कर सकें कि जिसमें कोई यह न समझे कि उसकी

उपेक्षा की गई है या उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया''।

ध्यान रहे कि तब मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार किया था।

संविधान सभा में लगभग 2473 संशोधनों पर बहस हुई। पूरी अवधि के दौरान एक भी व्यवधान के बगैर। संविधान सभा में हर प्रस्ताव पर जिरह तो अवश्य हुई, लेकिन हर फैसला आपसी सहमति और सर्वानुमति से हुआ। राजेंद्र बाबू ने अपने आखिरी अध्यक्षीय भाषण में यह स्वीकारा ''मतदान या लॉबी में मत विभाजन की शरण लिए बिना हम यह संविधान बना सके हैं''।

संविधान सभा में अपने अंतिम अध्यक्षीय भाषण में राजेंद्र बाबू ने दो कमियों को लेकर खेद व्यक्त किया था। (1)। विधान मण्डल के सदस्यों की कुछ न्यूनतम योग्यता होनी चाहिए। उनका मानना था कि कानून लागू करने वाले प्रशासकों और कानून पर बहस करने वाले वकीलों से तो हम उच्च योग्यता की उम्मीद रखते हैं। लेकिन कानून बनाने वाले विधान मण्डल के सदस्यों के लिए कोई न्यूनतम योग्यता नहीं है।

दूसरी बात जिस पर राजेंद्र बाबू को खेद रहा, वह थी कि स्वतंत्र भारत का पहला संविधान भारतीय भाषा में नहीं लिखा जा सका। हालांकि उन्होंने ये संतोष भी व्यक्त किया कि - ''वे लोग जिनकी भाषा हिंदी नहीं है, उन्होंने भी स्वेच्छा पूर्वक इसे राजभाषा के रूप में स्वीकार किया है। अपने इतिहास में पहली बार इस समय हमने एक भाषा स्वीकार की है, जिसका समस्त राजकीय प्रयोजनों के लिए सारे देश में प्रयोग होगा।'' लेकिन राजेंद्र बाबू अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी उतने ही आग्रही थे। अपने उसी भाषण में वह कहते हैं कि - ''हिंदी के साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्र को..।

दूसरी बात जिस पर राजेंद्र बाबू को खेद रहा, वह थी कि स्वतंत्र भारत का पहला संविधान भारतीय भाषा में नहीं लिखा जा सका। हालांकि उन्होंने ये संतोष भी व्यक्त किया कि - ''वे लोग जिनकी भाषा हिंदी नहीं है, उन्होंने भी स्वेच्छा पूर्वक इसे राजभाषा के रूप में स्वीकार किया है। अपने इतिहास में पहली बार इस समय हमने एक भाषा स्वीकार की है, जिसका समस्त राजकीय प्रयोजनों के लिए सारे देश में प्रयोग होगा।'' लेकिन राजेंद्र बाबू अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी उतने ही आग्रही थे। अपने उसी भाषण में वह कहते हैं कि - ''हिंदी के साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्र को अपनी भाषा की उन्नति करने की सिर्फ स्वतंत्रता ही नहीं होगी बल्कि उनको उस भाषा को उन्नत बनाने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाएगा जिसमें उनकी संस्कृति और परंपरा निहित है''।

राजेंद्र बाबू का अंतिम अध्यक्षीय भाषण (26 नवंबर, 1949) हमारे लिए संविधान को समझने की कुंजी है। अपने भाषण में राजेंद्र बाबू ने पूरी संवैधानिक व्यवस्था को बड़े आसान शब्दों में उसके दार्शनिक परिपेक्ष में रखा है। साथ ही भावी पीढ़ियों से इसे कारगर बनाने की अपेक्षा भी की है। मेरे विचार में भारतीय राजनीति और संविधान के हर विद्यार्थी को यह भाषण अवश्य पढ़ना चाहिए।

विश्व शांति के लिए गांधीवादी दर्शन

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति का दौर था। दुनिया दो विश्व युद्धों के बाद शांति और सद्भावना बनाए रखने के लिए और अधिक हथियार बना रही थी। भारत ने अहिंसा से शांतिपूर्वक स्वतंत्रता प्राप्त की थी। अपने नीति निदेशक सिद्धांतों में हमने निर्धारित किया था कि राज्य, अंतर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा, न्याय और बराबरी के सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने का प्रयास करेगा। अंतर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्वक मध्यस्तता द्वारा निपटाया जाएगा। उस पीढ़ी के सभी राजनैतिक कार्यकर्ताओं की भांति राजेंद्र बाबू को भी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के अहिंसा के मार्ग पर भरोसा था। संविधान सभा में अपने अंतिम भाषण में उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि- ''यदि हम राष्ट्रपिता की शिक्षाओं का सच्चे रूप में पालन करें और अपने संविधान

के इस निदेशक तत्व पर चलें तो यह निश्चित है कि हम अवश्य ही एक महान कार्य करने में सफल होंगे''।

माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी कहते हैं कि भारत युद्ध का नहीं बुद्ध का देश है। उनका मानना है कि यह युद्ध का समय नहीं है। 15 अगस्त 1947 को अपने भाषण में राजेंद्र बाबू ने विश्व बंधुत्व की भारत की सनातन परंपरा को रेखांकित किया– ''हमारा इतिहास बताता है और हमारी संस्कृति सिखाती है कि हम शांतिप्रिय हैं, और रहें। हमारा साम्राज्य, हमारी फतह दूसरे प्रकार की रही है। हमने दूसरों को जंजीरों से, चाहे वह लोहे की हों या सोने की भी क्यों न हों, कभी बांधने की कोशिश नहीं की। हमने दूसरों को अपने साथ लोहे की जंजीर से भी ज्यादा मजबूत मगर सुंदर और सुखद रेशम के धागे से बांध रखा है और वह बंधन धर्म का है, संस्कृति का है और ज्ञान का है'।

तत्कालीन केंद्र सरकार में मंत्री रहे कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने अपनी किताब 'पिलग्रिमेज टू फ्रीडम', वोल्यूम 2 की पृष्ठ संख्या 289 और 290 पर इस संदर्भ में लिखा है–

'जब सरदार का बंबई में देहांत हुआ, उस वक्त जवाहरलाल ने अपने मंत्रियों और अधिकारियों को निर्देश दिया कि वो दाह– संस्कार में शामिल होने के लिए न जाएं। मंत्रियों में मैं उस समय बंबई के पास माथेरन में था। श्री एन वी गाडगिल, श्री सत्यनारायण सिन्हा और श्री वी पी मेनन ने निर्देशों पर ध्यान न देते हुए अंतिम संस्कार में भाग लिया। जवाहरलाल ने डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद को भी कहा कि वो बंबई न जाएं, ये ऐसा विचित्र आग्रह था, जिसे राजेंद्र प्रसाद स्वीकार नहीं कर सके। दाह संस्कार में शामिल होने वाली महत्वपूर्ण शख्सियतों में डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद, राजाजी और पंत जी थे। मैं भी वहां था।'

इसका जिक्र कई और पुस्तकों में है। मसलन उस दौर के वरिष्ठ पत्रकार दुर्गा दास, खुद राजेंद्र प्रसाद के पुत्र मृत्युंजय प्रसाद ने 'पुण्य स्मरण'व महात्मा गांधी के प्रपौत्र और मशहूर इतिहासकार राजमोहन गांधी ने भी अपनी पुस्तक 'पटेल : ए लाइफ' में इसका जिक्र किया है–

13 मई, 1959 को उन्होंने लिखा : 'आज जिस भारत का नक्शा हम देख रहे हैं, वह सरदार पटेल के प्रयासों से बना है। लेकिन दिल्ली में उनका एक भी स्मृति चिन्ह नहीं। हम उन्हें महत्त्व नहीं देना चाहते, तो इसका मतलब यह नहीं है कि देश के लिए उनकी सेवाएं कम थीं।'

माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी कहते हैं कि भारत युद्ध का नहीं बुद्ध का देश है। उनका मानना है कि यह युद्ध का समय नहीं है। 15 अगस्त 1947 को अपने भाषण में राजेंद्र बाबू ने विश्व बंधुत्व की भारत की सनातन परंपरा को रेखांकित किया– ''हमारा इतिहास बताता है और हमारी संस्कृति सिखाती है कि हम शांतिप्रिय हैं, और रहें। हमारा साम्राज्य, हमारी फतह दूसरे प्रकार की रही है। हमने दूसरों को जंजीरों से, चाहे वह लोहे की हों या सोने की भी क्यों न हों, कभी बांधने की कोशिश नहीं की। हमने दूसरों को अपने साथ लोहे की जंजीर से भी ज्यादा मजबूत मगर सुंदर और सुखद रेशम के धागे से बांध रखा है और वह बंधन धर्म का है, संस्कृति का है और ज्ञान का है'।

श्रद्धांजलि देते हुए राजेंद्र बाबू ने कहा कि सरदार के पार्थिव शरीर को भले ही अग्नि ने अपने आगोश में समा लिया हो, लेकिन दुनिया में कोई आग ऐसी नहीं है, जो उनकी कीर्ति और लोकप्रियता को समाप्त कर सके।

उस महान सरदार को उनके निधन के कई दशकों बाद 1991 में भारत रत्न मिला। जबकि पद पर रहते भारत रत्न पाने की परंपरा आजादी के बाद पड़ गयी थी।

राजेन्द्र बाबू हमारी ऋषि परंपरा के अंतिम नेता थे। गांधी के सच्चे वारिस– उत्तराधिकारी। पूर्व पीएम चंद्रशेखर ने कहा था कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भारत की शक्ति और सामर्थ्य के सूत्रों को परखा था। उन्हें आत्मसात किया था। वे सूत्र उनके व्यक्तित्व में ही पूंजीभूत थे। भारत के जनजीवन से उनका गहरा लगाव था। इसी कारण वे निष्प्राण भारत को एक नई प्रेरणा, नई शक्ति

देने में समर्थ थे। राजेन्द्र बाबू उस मिट्टी से निकले थे, जिसे भारत कहा जाता है। उनकी जीवनी पढ़ने पर पता चलता है कि एक बात जीवन-भर उनके जेहन में घूमती रही है कि इस देश को भारत कैसे बनाया जाए।

भारतीय जीवनधारा से जुड़े थे। राष्ट्रपति बनने के बाद भी उन्होंने इस जीवनधारा को नहीं बदला। उनके जमाने में राष्ट्रपति भवन में विदेशी मेहमानों के लिए भले ही अंग्रेजी ढंग से खाना परोस दिया जाता रहा हो, लेकिन भारत के राष्ट्रपति खुद भारतीय ढंग से थाली में परोसा खाना ही खाते रहे। बाहर से आए मेहमानों ने उनकी इस भारतीय पद्धति का सत्कार ही किया। राष्ट्रपति खुद घोड़ागाड़ी पर सुबह टहलने निकल जाते थे। लोगों से उनके दुख-दर्द का हाल पूछते थे। पश्चिमपरक सत्ता-व्यवस्था ने बड़ा विरोध करके इस परंपरा को बंद कराया।

इसी तरह विरोध हुआ, जब उन्होंने बनारस में पंडितों की पादपूजा और पाद-प्रच्छालन किया। राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री को लिखे पत्र में कहा: 'हमारी संस्कृति में विद्वान का स्थान राजा से भी बड़ा होता है। विद्वानों का सम्मान करके हम अपना ही सम्मान करते हैं।'

राजेन्द्र बाबू 1950 में अंतरिम राष्ट्रपति बने। एक वर्ग ने इस बात का कड़ा विरोध किया। अंग्रेजी पद्धति को स्वीकार न करनेवाला राष्ट्रपति इस देश में कैसे चलेगा? 1952 और 1957 में उनके चुनाव के समय फिर व्यवस्था ने यही सवाल उठाए। राजेन्द्र बाबू अडिग रहे और उन्होंने पश्चिमपरक मान्यताओं से जूझते रहने का रास्ता चुना। चाहे हिंदू कोड बिल का सवाल हो, चाहे केरल में राष्ट्रपति शासन लगाने का सवाल हो, चाहे सोमनाथ मंदिर के उद्घाटन में जाने का सवाल हो, राजेन्द्र बाबू दृढ़तापूर्वक अपनी मर्यादाओं पर अडिग रहे। ईमानदारी से अपनी बात कहते रहे।

राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू की विदेश यात्राओं को लेकर भी तत्कालीन प्रधानमंत्री के मन में सीमाएं थीं। इन यात्राओं को रोकने की भी कोशिश हुई। पर, राजेंद्र प्रसाद की विभिन्न देशों की यात्राएं काफी सफल रहीं। गर्मजोशी भरी भी। मसलन जापान में, सम्राट के राजकीय भोज में, केवल शाकाहारी व्यंजन ही परोसे गये, जो राष्ट्रपति प्रसाद के प्रति श्रद्धा का प्रतीक था।

जब वह हनोई पहुंचे, तो होली का त्योहार था। हनोई में हो ची मिन्ह ने राजेंद्र प्रसाद के गाल पर गुलाल लगाकर होली सेलिब्रेट किया। कहा, हम भारत को फॉलो करते हैं।

इसी तरह श्रीलंका में, प्रधानमंत्री भंडारनायके ने राजेंद्र बाबू से कहा: 'भारत हमारी मातृभूमि है; भाइयों में कोई विवाद नहीं हो सकता।'

दुर्गा दास बताते हैं कि राजेंद्र बाबू 1960 में सोवियत संघ की यात्रा पर गये। अपनी यात्रा के दौरान, राष्ट्रपति प्रसाद ने सोवियत शिक्षा प्रणाली, देश के कृषि विकास और जिस तरह से रूसियों ने राष्ट्रीय भाषा की समस्या का समाधान किया था, उसका गहन और उपयोगी अध्ययन किया। इस यात्रा से वापस आकर उन्होंने भाषा पर कैबिनेट के लिए बीस पन्ने का नोट तैयार किया। इसे उन्होंने अपनी रूसी यात्रा के अनुभव के आधार पर तैयार किया था।

दुर्गा दास ने लिखा है, 'अमेरिकी राष्ट्रपति आइजनहावर 1959 में भारत आये। लौटने के बाद अमेरिका से उन्होंने तत्काल निमंत्रण राजेंद्र बाबू को भेजा। इस आशय के साथ कि आप अपना कार्यकाल खत्म होने से पहले अमेरिका आयें। आइजनहावर ने दिल्ली में राजेंद्र बाबू के बारे में कहा था कि भारत के राष्ट्रपति, दिल्ली में 'ईश्वर के नेक बंदा', के रूप में हैं।

आइजनहावर राजेंद्र प्रसाद को अपने साथ अमेरिका घूमाना चाहते थे। पर, इस निमंत्रण के बाद, यात्रा प्रस्ताव को पंडित जी और विदेश मंत्रालय ने खत्म कर दिया। पंडित जी ने लिखा, 'अभी हमलोगों में से बहुत लोग अमेरिका गये हैं। यह जरूरी नहीं लगता कि अभी आप अमेरिका जायें।'

इस पर राजेंद्र प्रसाद ने लिखा, 'मैं अपना समय खुद तय करूंगा।' कुछ ऐसा ही हुआ, जब ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ 1961 में राजकीय दौरे पर भारत आयीं। उन्होंने राजेंद्र प्रसाद से ब्रिटेन आने का अनुरोध किया, आमंत्रण दिया। पर, फिर से राजेंद्र बाबू की यात्रा को रोक दिया गया।

वह ब्रिटेन नहीं जा सके।

राजेंद्र बाबू के निजी सचिव रहे, संत कुमार वर्मा ने उनकी जीवनी लिखी है। भोजपुरी में। 'बाबू' नाम से। राजेंद्र बाबू की विदेश यात्राओं के बारे में विस्तार से बताया है–

'1956 में भारत के राष्ट्रपति के रूप में चुने जाने पर नेपाल, 1957 में जापान, मलाया और इंडोनेशिया, 1959 में इंडो–चीन, कंबोडिया, दक्षिण वियतनाम, उत्तरी वियतनाम और लाओस तक, 1959 में श्रीलंका और 1960 में रूस की यात्रा की। उनके भारतीय पहनावे, खान–पान, रहन–सहन और आचरण के कारण भारत के पहले प्रधानमंत्री पं जवाहर लाल नेहरू उन्हें विदेश यात्रा पर जाने के लिए बहुत अनिच्छुक रहते थे, लेकिन उनकी विदेश यात्राएँ देश के लिए उतनी ही प्रभावी और लाभदायक थीं जितनी कम लोगों ने की होंगी।'

रूस में एक स्वागत समारोह में ठीक ही कहा गया कि भारत के राष्ट्रपति न केवल एक परिपक्व राजनीतिज्ञ हैं, बल्कि एक अनुभवी किसान भी हैं।

1962 में राष्ट्रपति पद से अवकाश के बाद वे सदाकत आश्रम पटना में रहने लगे। खुद को पहले से कहीं अधिक स्वतंत्र और खुश पाया। जेपी ने चंदा करके उसे रहने लायक बनवाया। हालांकि जेपी उनके लिए एक अलग मकान बनवाना चाहते थे। पर उसके लिए आम के पेड़ काटने पड़ते।

राजेंद्र बाबू ने इस पर कहा था कि 'इस पके आम के लिए आम के पेड़ों को मत काटो।'

अभी ठीक से व्यवस्थित भी नहीं हुए थे कि 9 सितंबर, 1962 को उनकी पत्नी, श्रीमती राजवंशी देवी की मृत्यु हो गई। इसके बाद नवंबर के अंत में देश पर चीनी आक्रमण हुआ।

उन्होंने बहुत पहले सरदार पटेल की तरह ही भारत सरकार को चीनी ख़तरे से आगाह कर दिया था। पर, उनकी बातों पर सतर्कता से काम नहीं किया गया। उन्होंने आक्रमण के खिलाफ विभिन्न स्थानों पर भाषण दिए। राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए बड़ी मात्रा में धन व आभूषण एकत्र किए। यहां तक कि अपनी धर्मपत्नी के सारे आभूषण भी रक्षा–कोष में दान कर दिये। चीनी आक्रमण के बाद राजेंद्र बाबू ने पटना के गांधी मैदान में 'हिमालय बचाओ' बैनर के नीचे हुई सभा को संबोधित किया। डॉ राममनोहर लोहिया द्वारा आयोजित इस सभा में जनरल करियप्पा भी शामिल हुए थे। सभा में कुछ कड़ी बातें कही गई, जो तत्कालीन सरकार को अच्छी नहीं लगी।

राजेंद्र बाबू लगातार चीनी आक्रमण के खिलाफ जनमत तैयार करते रहे। राष्ट्रीय सुरक्षा–सहयोग के लिए सामग्री, सोना और चांदी इकट्ठा करने में लगे रहे। अंततः इसका घातक असर उनके शरीर पर हुआ।

राजेंद्र बाबू के जीवनीकार व नजदीकी सहयोगी संतकुमार वर्मा ने लिखा है कि जिस प्रकार नोआखाली कांड महामना मदन मोहन मालवीय के लिए घातक सिद्ध हुआ, उसी प्रकार चीनी आक्रमण पूज्य बाबूजी (राजेंद्र बाबू) के लिए घातक सिद्ध हुआ। 28 फरवरी, 1969 को रात्रि लगभग 10.15 बजे राजेंद्र बाबू का 79 वर्ष की आयु में सदाकत आश्रम में निधन हो गया।

याद रखिए, ऐसे विलक्षण कर्मयोगी को जीवन के अंतिम पल बेहद कठिन परिस्थितियों में गुजारने पड़े। उनके निधन पर दिल्ली से किसी की भी भागीदारी तक न केवल प्रतिबंधित की गई बल्कि उनके परम मित्र तत्कालीन राज्यपाल राजस्थान डॉ सम्पूर्णानंद तक को अंतिम क्रिया में जाने से रोक दिया गया।

ऐसी अनेक प्रसंग हैं। इसे हम सब स्वीकार करते हैं कि आज ना सिर्फ देश, बल्कि दुनिया में भारत व गांधी की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। पूरी दुनिया में 'नीड वर्सेस ग्रीड' की लड़ाई है। दुनिया के सामने अस्तित्व बचाने की चुनौती सामने आ रही है। आज सार्वजनिक जीवन में चरित्र का संकट सबसे बड़ा सवाल बनकर उभरा है। इन चुनौतियों से पार पाने में गांधी और उनके जेनुइन उत्तराधिकारी राजेंद्र बाबू जैसे लोग राह दिखाते हैं।

प्रस्तुति – गीता

(आकाशवाणी के राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यान का संपादित अंश)

संस्मरण

रामायण और भागवत में श्रद्धा

बापूजी दिन में भी काफी देर तक बा की खाट पर बैठने लगे। उनके बठने से बा को थोड़ी शान्ति मिलती थी। बापूजी ने हमसे कहा: 'अब बा की दवा सिर्फ रामनाम ही है। दूसरे सब इलाज छोड़ दो। मेरी वृत्ति तो यह है कि शहद और पानी के सिवा दूसरी कोई खुराक भी मत दो। बा खुद मांगे तो बात दूसरी है। मैं दवा में नहीं मानता।

वनमाला परीख

सुशीला नय्यर

बा की पुरानी डायरियों से पता चलता है कि सन् 1931-33 में वे तीन बार जेल गईं और हर बार वे वहां नियमित रूप से रामायण और भागवत सुनती रहीं। आगाखान महल में शाम की प्रार्थना के साथ तुलसी-रामायण की दो चौपाइयां हमेशा गाई जाती थीं। बा बड़ी दिलचस्पी के साथ दोपहर को रामायण उठा कर ले जातीं और शाम को पढ़ी जाने वाली चौपाइयों को पहले से पढ़ लेतीं और उनका हिन्दी अर्थ समझने की कोशिश करतीं। सेवाग्राम में भी उनका यही कार्यक्रम रहा करता। वहां वे किसी न किसी से उनका अर्थ समझ लिया करती थीं। आगाखान महल में प्रार्थना के बाद बापूजी ने बा को खुद अर्थ समझाना शुरू किया। बा की श्रद्धा अन्धश्रद्धा नहीं थी। जहां कहीं बहुत अतिशयोक्ति आती, बा कह उठतीं: 'यह तो सब निरी गप मालूम होती है!' जिस तरह बालकाण्ड में दशरथ और जनक के वैभव के लम्बे-लम्बे वर्णन सुनकर और यह देखकर कि स्वयंवर के मण्डप की रचना का वर्णन करने में तुलसीदासजी ने पन्ने के पन्ने भर दिये हैं, बा बोल उठतीं : 'क्या तुलसीदासजी को और कोई काम ही न था कि बैठे-बैठे जैसे लम्बे वर्णन लिखते रहे?' बापूजी को ख्याल आया कि रामायण में से जिस तरह के वर्णन, आख्यान वगैरा निकाल कर एक संक्षिप्त तुलसी-रामायण तैयार कर ली जाय, तो वह बा के बहुत काम आये। सो उन्होंने रामायण में निशान लगाने शुरू किये। बालकाण्ड में और अयोध्याकाण्ड के कुछ हिस्से में निशान लगा भी लिये। प्रार्थना में भी संक्षिप्त रामायण पढ़ने का सिलसिला शुरू किया। उसका गुजराती अनुवाद करने को कहा। बोले : 'हर रोज दो चौपाई का अनुवाद करके उसे सुन्दर अक्षरों में लिख लिया करो और बा को दे दिया करो। जिससे बा को बहुत अच्छा लगेगा और मुझे भी बहुत संतोष होगा।' भाई ने अनुवाद शुरू किया। बापू खुद उस अनुवाद को सुधारने लगे।

लेकिन आगे चलकर बापू का उपवास आया और दूसरी भी कई बातें पैदा हुईं। नतीजा यह हुआ कि बापूजी का बा के लिए रामायण में निशान लगाना और भाई का अनुवाद करना सब अधूरा रह गया।

आगाखान महल में प्रार्थना के बाद बापूजी ने बा को खुद अर्थ समझाना शुरू किया। बा की श्रद्धा अन्धश्रद्धा नहीं थी। जहां कहीं बहुत अतिशयोक्ति आती, बा कह उठतीं: 'यह तो सब निरी गप मालूम होती है!' जिस तरह बालकाण्ड में दशरथ और जनक के वैभव के लम्बे-लम्बे वर्णन सुनकर और यह देखकर कि स्वयंवर के मण्डप की रचना का वर्णन करने में तुलसीदासजी ने पन्ने के पन्ने भर दिये हैं, बा बोल उठतीं :

बापूजी के उपवास के दिनों में शाम की प्रार्थना के बाद बा को रामायण की चौपाइयों का अर्थ सुनाना मेरे जिम्मे आया और बाद में भी यह काम मुझ पर ही रहा। बा बहुत ध्यान के साथ अर्थ सुनती थीं और जहां कहीं गहरी धर्म-भावना से भरी चौपाइयां आ जातीं या बहुत करुण रस आ जाता, वहां वे आलोचना भी किया करती थीं। यह सिलसिला लगभग बा की मृत्यु के समय तक जारी रहा। मृत्यु के दो-एक रोज पहले बा बहुत थकी दीखती थीं। आंख बन्द करके पड़ी थीं। मैंने पूछा: 'बा, रामायण का अर्थ सुनेंगी क्या?' बा ने आंखें खोलीं। 'पूछती क्यों है कि सुनेंगी क्या? रामायण लाकर अर्थ करना शुरू क्यों नहीं कर देती?' बा ने जरा चिढ़कर कहा। मैं बोली: 'बा, आप थकी-सी लगती थीं, इसलिए मैंने पूछ लिया।' बा ने शान्तिके साथ उत्तर दिया: 'लेकिन लेटे-लेटे रामायण का अर्थ सुनने में मुझे कौन थकान लगने वाली है? लाओ, सुनाओ अर्थ।'

तुलसी-रामायण के बाद बापूजी ने दोपहर के समय में बा को बाल-रामायण पढ़कर सुनाई। बाद में उन्होंने वाल्मीकि रामायण का गुजराती अनुवाद पढ़ा। शुरू में बा उसे भी बापू के पास बैठकर सुना करती थीं। लेकिन बापूजी उसे जल्दी पूरा करना चाहते थे, और बा सारा समय बैठकर सुन नहीं सकती थीं, इसलिए उसको भी बा ने मुझसे सुनना शुरू किया। बाद में जब मनु आ गई, तो यह काम उसने संभाल लिया। बा ने मनु से सारी वाल्मीकि रामायण सुनी।

दोपहर में भोजन के समय मैं बापूजी के पास संस्कृत में वाल्मीकि-रामायण पढ़ा करती थी। बा उस समय भी बापूजी के पास आकर बैठ जातीं और बहुत रस के साथ सब सुनतीं। बा की बीमारी के बढ़ने पर संस्कृत वाल्मीकि रामायण का अभ्यास बन्द कर देना पड़ा, नहीं तो बापूजी का इरादा उसमें से भी एक संक्षिप्त रामायण तैयार करने का था। बालकाण्ड और अयोध्या काण्ड का कुछ हिस्सा तैयार हो भी चुका था।

रामायण और भागवत में श्रद्धा

गुजराती वाल्मीकि रामायण पूरी होने पर मनु ने बा को 'बारडोली सत्याग्रह का इतिहास' पढ़कर सुनाना शुरू किया। लेकिन बा ने उसे यह कहकर बन्द करवा दिया कि यह सब तो मैं जानती हूं। उन्हें धार्मिक पुस्तकों में अधिक दिलचस्पी थी। इसलिए 'भागवत' मंगाई और समूची भागवत सुनी। इसके बाद भी खास-खास दिनों में (जैसे, एकादशी वगैरा) बा भागवत सुना करती थीं। अपने अंतिम दिनों में बा ने फिर नियमित रूप से भागवत सुनना शुरू किया था। उन दिनों वे शाम को चार से साढ़े चार तक भागवत सुना करती थीं। लेकिन कोई मिलने वाले आ जाते, तो भागवत बन्द रहती थी। एक बार पांच-छह रोज तक लगातार मुलाकाती आते रहे। आखिर जिस दिन कोई नहीं आया उस दिन भी मैं भागवत सुनाने नहीं पहुंची। सिलसिला टूट चुका था। और बा की बीमारी बढ़ जाने के कारण मुझे रात में भी काफी काम रहता था। इसलिए उस दिन मैं दोपहर में सो गई। भागवत के समय नींद तो खुल गई थी। मगर थकी थी, सो सुस्ती कर गई। मनको मना लिया कि आज बा को शायद ही भागवत की याद आये। मगर बा यों भूलने वाली नहीं थीं। उन्होंने मनु को बुलाकर उससे भागवत सुनी। जिसके बाद भी जो कुछ दिन उन्होंने भागवत सुनी, सो मनु से ही सुनी। मेरी फिर सुनाने जाने की हिम्मत ही नहीं हुई। लेकिन मन में तो आज भी इसका पछतावा बना हुआ है। मैं जानती थी कि बा को मुझसे भागवत सुनना अच्छा लगता था, क्योंकि मैं उन्हें थोड़ा-बहुत अर्थ भी समझा सकती थी। मगर मैं एक दिन का आलस्य कर गई। दूसरे दिन से जाने लगी होती, तो शायद एकाध बार बा कोई तीखी बात कहतीं, लेकिन मन में तो खुश ही होतीं। मगर मुझसे यह न हो सका। कुछ देर के लिए मैं यह भूल ही गई कि जीवन क्षण-भंगुर है, जिसका कोई भरोसा नहीं। इसलिए सेवा का मौका मिलने पर तो ऐसे किसी भी हालत में खोना न चाहिये।

व्रत-अपवास वगैरा में श्रद्धा

आगाखान महल में पहुंचने के कुछ दिन बाद बा ने बापू से पूछा: 'एकादशी कब है?' बापूजी ने मि० कटेली से एक पंचांग मंगवा देने को कहा। लेकिन बाहर की कोई भी चीज मंगवाने के लिए सरकारी इजाजत की जरूरत थी और उसके मिलने में देर लग सकती थी। इसलिये बापूजी ने मुझे एक जंत्री (कैलेंडर) बनाने को कहा। उसका तरीका भी बताया। जिस दिन बापू पकड़े गये थे, उस दिन की तिथि, वार वगैरा हम जानते थे। उस पर से सारे साल का हिसाब लगाया। मेरा एक पूरा दिन इसमें खर्च हुआ। कैलेंडर में बापूजी ने पूनों के दिन पर लाल पेंसिल का और

अमावस पर नीली का निशान लगवाया। उस परसे उन्होंने बा को तिथियां समझायीं और एकादशी किस दिन पड़ेगी सो बताया। करीब एक महीने तक हमारे पास वही एक कैलेंडर था। बाद में पंचाग आ गया और कैलेंडर भी।

एकादशी के दिन हमेशा बा फलाहार किया करती थीं। मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी किसी एकादशी को वे उपवास करना भूली हों। इसी तरह हर सोमवार के दिन, सोमवती अमावस के दिन, और अक्सर पूनों, जन्माष्टमी, शिवरात्रि वगैरा पवित्र तिथियों पर वे उपवास करना चूकती न थीं। कभी-कभी सोमवार, एकादशी और दूसरी कोई तिथि एक साथ आ जाती, तो बा तीन-चार दिन तक लगातार उपवास रखतीं। बीमार हों या अच्छी, इनमें से किसी भी उपवास को छोड़ने का अन्हें कभी विचार तक नहीं आता था। राष्ट्रीय सप्ताह, स्वतंत्रता-दिन और 'हिन्दुस्तान छोड़ो' दिन के उपवास इन उपवासों के अलावा होते थे, और बा इन्हें भी कभी चूकती न थीं।

अपने लड़कों की सख्त बीमारियों में भी मैंने उन्हें दवा नहीं दी। लेकिन बा के लिये मैंने वह नियम नहीं रखा। आज तो खुद बा को भी दवा से अरुचि हो गई है। रामनाम के सिवा उसे चैन नहीं पड़ता। यह दृश्य करुण है। किन्तु मुझे बहुत प्रिय है। राम के सिवा मैंने आज उसके मुंह से कुछ सुना ही नहीं। ऐसे समय तो मैं दवा को छोड़ ही दूं। ईश्वर को जिलाना हो, जिलाये; ले जाना हो, ले जाये। उसे बचाना होगा तो वह यों ही बचा लेगा, नहीं तो मैं बा को जाने दूंगा।'

रामनाम ही दवा है

19 को बा रातभर 'ऑक्सीजन' की नली नाक में डालकर पड़ी रहीं। अच्छी तरह सोईं। लेकिन 20 फरवरी को सुबह 5 बजे से बेचैनी शुरू हो गई। मुंह से बार-बार 'राम, हे राम' पुकारती थीं। सॅलिर्गेन का पेशाब पर कोई असर न होने से वातावरण में बड़ी निराशा छा गई थी। तिस पर बा की बेचैनी सब को बेचैन बना रही थी। बापूजी आकर बा की खाट पर बैठे। उनके कन्धे पर सिर रखकर बा कुछ शान्त हुई। उसी तरह बैठे-बैठे बापूजी ने सुबह की प्रार्थना की। बारी-बार से सब लोग बा के पास बैठ कर रामधुन और भजन गाते थे। जब कोई गानेवाला न होता, तो ग्रामोफान पर रेकार्ड बजाने लगते थे। 'श्रीराम भजो दुःखमें सुखमें' यह भजन बा को बहुत प्रिय था। जिसे सुनते समय वे क्षणभर के लिए अपनी वेदना भूल जाती थीं। 9 बजे 'क्लोराल' और 'ब्रोमाइड' की एक खुराक दी। उसके बाद बा करीब डेढ़ घंटा सोई। उठीं तो तबीयत अच्छी थी। बैठकर अच्छी तरह दतौन किया, मसूड़ों को जोर से घिसा, नाक में पानी चढ़ाया। सबको आश्चर्य होने लगा कि बा में इतनी ताकत कहां से आ गई? फिर वे चाय पीकर आरामसे लेट गई। दवा लेने से इनकार कर दिया। दिन में एक बजे फिर बेचैनी शुरू हुआ। 'राम, हे राम' पुकारने लगीं। उनकी आवाज जितनी करुण थी कि सुनी नहीं जाती थी। जब वे बोलती थीं तब जैसा लगता था, मानो गले पर छुरी चलते समय बकरी मिमिया रही हो! गीतापाठ, रामधुन, भजन वगैरा का सिलसिला तो जारी ही था। जिसके कारण बीच-बीच में कुछ देर के लिये बा थोड़ी शान्त हो जाती थीं।

बापूजी दिन में भी काफी देर तक बा की खाट पर बैठने लगे। उनके बठने से बा को थोड़ी शान्ति मिलती थी। बापूजी ने हमसे कहा: 'अब बा की दवा सिर्फ रामनाम ही है। दूसरे सब इलाज छोड़ दो। मेरी वृत्ति तो यह है कि शहद और पानी के सिवा दूसरी कोई खुराक भी मत दो। बा खुद मांगे तो बात दूसरी है। मैं दवा में नहीं मानता।

अपने लड़कों की सख्त बीमारियों में भी मैंने उन्हें दवा नहीं दी। लेकिन बा के लिये मैंने वह नियम नहीं रखा। आज तो खुद बा को भी दवा से अरुचि हो गई है। रामनाम के सिवा उसे चैन नहीं पड़ता। यह दृश्य करुण है। किन्तु मुझे बहुत प्रिय है। राम के सिवा मैंने आज उसके मुंह से कुछ सुना ही नहीं। ऐसे समय तो मैं दवा को छोड़ ही दूं। ईश्वर को जिलाना हो, जिलाये; ले जाना हो, ले जाये। उसे बचाना होगा तो वह यों ही बचा लेगा, नहीं तो मैं बा को जाने दूंगा।'

शाम को बा ने अनिमा मांगा। बापूजी ने टालना चाहा: 'अब रामनाम ही तेरी दवा है।' मगर बा नहीं मानीं। मैंने बापूजी से कहा: 'मांगती हैं तो ले लेने दीजिये न। अन्त-अन्त में जितना संतोष दे सकें दें।' बापू मान गये। अनिमा लेने से मल खूब निकला। उसके बाद बा दो घंटे आराम से सोई। उनकी हालत इतनी अच्छी लगने लगी कि मैंने बापूजी से कहा: 'बापूजी, दवा देने की इजाजत दीजिये न? जब तक प्राण हैं, प्रयत्न क्यों न किया जाय?' लेकिन बापू मेरी क्यों सुनने लगे?

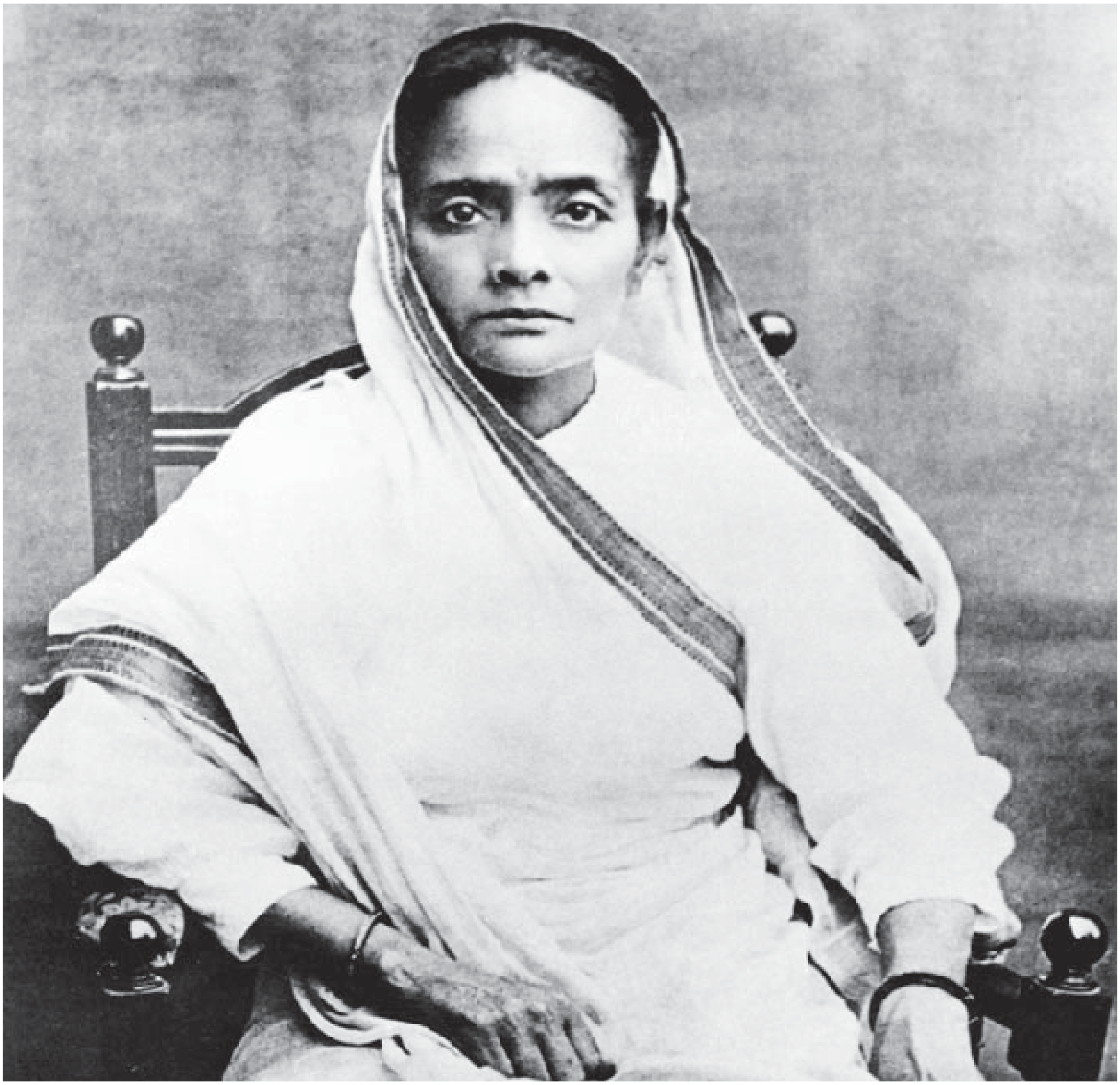

सबकी मां

रात को डॉ० दीनशा मेहता को भी वहीं सोने की इजाजत मिली। जबसे स्थिति गंभीर हुई थी, मैं आधी से भी ज्यादा रात तक बा के पास बैठती थी। कनु, प्रभावती, मनु, भी, सभी बारी–बारी से बैठते थे। हमेशा एक साथ दो आदमियों के बैठने की जरूरत रहती थी। जब मैं न होती तब डॉ० गिल्डर अपने बिस्तर से उठकर बीच–बीच में बा को देख जाते थे। उनकी तबीयत बहुत अच्छी नहीं थी, इसलिए उनको ज्यादा तकलीफ देना ठीक नहीं मालूम होता था। लेकिन डॉक्टर दीनशा को जगाने में संकोच रखने की जरूरत न थी। इसलिए उनको बा के पास बैठाकर मैं रात दो बजे सोने चली गई। सुबह उठने पर पता चला कि चार बजे के करीब बा की नाड़ी बहुत खराब हो गई थी, और डॉ० गिल्डर को जगाया गया था। बाद में जब मैं बा के पास पहुंची, तो देखा कि डॉ० गिल्डर बा के पास कुर्सी लगाये बैठे थे। उस समय बा की नाड़ी ठीक थी। बा रेंडी का तेल मांग रही थीं, जिसका जिक्र पहले आ चुका है। 'डॉक्टर साहबने कहा : 'बा, रेंडी के तेल से कमजोरी बढ़ेगी। वह नहीं लेना चाहिये।' बा ने कहा: 'बढ़ने दीजिये न! मुझे तो अब मसान में ही जाना है न?'

डॉक्टर साहब ने कहा: 'बा, आप ऐसा क्यों कहती हैं? अभी तो आपके लड़के आनेवाले हैं; आज देवदास आयेंगे, रामदास आयेंगे। उन सबसे मिलना है न?'

बा मुस्कराने लगीं। फिर गंभीर होकर कहने लगीं: 'उन्हें क्यों बुलाते हैं? आप सब मेरे लड़के ही हैं न? मर जाऊं तो जला देना। रामदास को तो आने से रोक ही देना। किराया बहुत लगता है और गाड़ियों में भीड़ बेहद रहती है।'

बा हर रोज हरिलाल भाई के बारे में पूछा करतीं। सब उनकी तलाश में भी रहते थे, मगर वे कहीं मिलते न थे। तारीख बीस को स्वामी आनन्द ने उन्हें ढूंढ़ निकाला। हरिलालभाई ने फोन पर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब से कहा कि वे दिन में आना चाहते थे मगर सो गये थे इसलिए आ न सके। हम लोग समझ गये कि इस तरह सो जाने का मतलब क्या था। बा को गुस्सा आ गया। बापू ने उन्हें समझाकर शान्त किया। 21 फरवरी को दुपहर में हरिलालभाई आये। उनकी हालत देखकर वा बहुत दुःखी हुए, और मारे दुःख के अपना सिर पीटने लगीं। हरिलालभाई को उनके सामने से हटा दिया गया।

मनु ने बा को भजन सुनाये। बा की इच्छा थी कि संतोक बहन और मनु रात उन के पास रहें। मगर सरकार ने इजाजत नहीं दी। देवदासभाई को रहने की इजाजत थी। वे उन लोगों को छोड़ने बाहर गये। बा मेरी गोद में सो गईं। मगर आज की नींद से मुझे खुशी नहीं थी। पेशाब न उतरने के कारण अब नशा-सा रहने लगा था। यह नींद ताजगी लाने वाली नींद न थी। रात साढ़े ग्यारह बजे मैं उठी। प्रभावती बहन बा के पास आकर बैठीं। बा ने उनसे कहा: 'चलो, हम दोनों ...।

इतने श्रम से बा की छाती में दर्द होने लगा था। सुबह बा ने रेंडी का तेल लेने का आग्रह किया था। उस परसे मैंने बापूजी से पूछा : 'क्या ऐसी हालत में आप बा को दूसरी दवा देने की इजाजत न देंगे?' बापूजी ने कहा: 'बा ने रंडी का तेल आग्रहपूर्वक लिया है, इसलिये मैं विरोध कर ही नहीं सकता। जो मुनासिब समझो दो।' जिस पर मैने बा को हृदयके रोग की दवा दी और रामधुन शुरू की। बा शान्त होकर सुनने लगीं।

अंतिम रात

शाम को 6 बजे के करीब देवदास भाई, मनु (हरिलालभाई की लड़की) और संतोक बहन आ पहुंचीं। बा अन्हें देखकर रो पड़ीं। हरिलालभाई पर उनका रोष अभी तक बना हुआ था। देवदासभाई को देखकर बोलीं :'अब तू सबको संभालना। बापूजी तो साधु हैं। उन्हें सारी दुनिया की चिन्ता है। हरिलाल को तो तू जानता ही है। इसलिए अब परिवार तुझी को संभालना है।'

मनु ने बा को भजन सुनाये। बा की इच्छा थी कि संतोक बहन और मनु रात उन के पास रहें। मगर सरकार ने इजाजत नहीं दी। देवदासभाई को रहने की इजाजत थी। वे उन लोगों को छोड़ने बाहर गये। बा मेरी गोद में सो गईं। मगर आज की नींद से मुझे खुशी नहीं थी। पेशाब न उतरने के कारण अब नशा-सा रहने लगा था। यह नींद ताजगी लाने वाली नींद न थी। रात साढ़े ग्यारह बजे मैं उठी। प्रभावती बहन बा के पास आकर बैठीं। बा ने उनसे कहा: 'चलो, हम दोनों सो जाएं। जितने में उन्हें जोर की खांसी आई। मैं दवा की खुराक लेकर बा के पास पहुंची। बा ने दवा तो नहीं ली, लेकिन मुझे खाट के पास से बदबू आई। बत्ती जलाकर देखा तो खाट में दस्त हो गया था। बा को इसका पता भी न था। मुझे लगा, यह जाने की तैयारी है। खाट के कपड़े बदले और बा को लिटाया। जितने में देवदास भाई आ गये। व खड़े पैरों बा की चाकरी में लग गये। मैं बत्ती के पास जमीन पर बैठकर बा के स्वास्थ्य की डायरी लिखने लगी। देवदासभाई धीरे-धीरे बा का सिर दबा रहे थे। उन्होंने समझा कि बा सो गई हैं, सो दबाना बन्द कर दिया। बा ने मुझे पुकारा: 'सुशीला, तू भी थक गई क्या?' मैंने कहा :'बा, मैं क्यों थकने लगी?' और मैंने सिर दबाना शुरू कर दिया। बा के सिर में दर्द हो रहा था। चक्कर आ रहे थे। विचारों में कुछ अस्पष्टता आ गई थी। 'यूरीमिया' के चिह्न प्रकट होने लगे थे। दो बजे बा सो गईं। पौने तीन बजे मैं सोने के लिए उठी। देवदासभाई पांच बजे तक बा के पास खड़े रहे थे। उनके चेहरे से करुणा और प्रेम टपक रहा था। इस आशंका से कि मां जाने की तैयारी में हैं, उनका दिल बालक की तरह रो रहा था। वहां खड़े हुए वे मां के प्रति पुत्र के प्रेम की मूर्ति-से दिखाई पड़ते थे ।

स्मरण

कस्तूरबा की गृहस्थी

जो भी हो, महात्मा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई? 1916 के टेलीग्राम में कविगुरु ने गांधी जी को 'महात्मा' कहकर संबोधित किया था। बेशक गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के द्वारा गांधी को महात्मा पुकारने पर उसी नाम से गांधी जी का सुपरिचित हो जाना स्वाभाविक था। परंतु 1916 से पहले ही लोग उन्हें महात्मा कहकर पुकारना शुरू कर चुके थे। सरोजिनी नायडू ने कहा था कि 1914 में लंदन में गांधी जी से पहली बार मुलाकात के समय से ही 'महात्मा' संबोधन उनके कानों में पड़ा है। दक्षिण अफ्रीका से गांधी जी लंदन होकर भारत लौटे। यानी उनके भारत में पहुँचने से पहले ही इस देश की मिट्टी में महात्मा शब्द अंकुरित हो चुका था।

शरत कुमार महांति

गांधी जी बहुत ही सादा और सहज जीवनयापन करते थे। अपने हाथों से खुद का काम करने के साथ-साथ दूसरों का काम भी कर देते थे। ऐसे पति के साथ चलना तो बहुत सहज बात है, परंतु कितना सहज था यह सिर्फ कस्तूरबा ही जानती हैं। पति और घर के मालिक होने के नाते गांधी जी ने क्या उनका दुर्गुण छुपाया? गांधी जी ने वैसे भी कौन-सी बात छुपाई कि इसे छुपाते भला। गांधी जी और कस्तूरबा का निविड़ दांपत्य प्रेम हम सभी को अभिभूत करता है। प्रेम के उस महत स्तर तक पहुँचने के लिए दोनों को कितने संघर्ष और इम्तहानों से गुजरना पड़ा। पार्क में सहजता से घूमने की तरह वे दोनों अनायास एवरेस्ट के श्रृंग तक नहीं पहुँचे। पत्नी के साथ जिन्हें लड़ना पड़ता था, सोचिए वह अहिंसा के अवतार थे। भूल मत जाइए कि कस्तूरबा से अहिंसा के महत्त्व को गांधी जी ने सीखा, ऐसा उन्होंने उल्लेख किया है। अहिंसा-पथ भी फिसलन भरा है। अपने साथ संग्राम करते हुए इंसान अहिंसा की सीढ़ी चढ़ता है।

सभी जानते हैं कि पति-पत्नी के बीच के झगड़े महत्त्वहीन होते हैं। दंपत्तियों के बीच, एक-दो विषयों को लेकर महीनों, सालों या सारा जीवन ही झगड़ा चलता रहता है। फिर इस तरह के झगड़े का महत्त्व भला क्या है? जो झगड़े नीति को लेकर होते हैं, वहाँ दोनों अपने आपको पहचानते हैं। परस्पर को जानते हैं। इस तरह के झगड़ों के बाद दोनों पति-पत्नी ऊपर उठते हैं, नई सीढ़ी चढ़ते हैं। उस नई सीढ़ी पर चढ़ने के बाद दोनों में पुरानी बातों को लेकर झगड़े नहीं होते, अगर झगड़ा होता है तो वह नए विषय पर होता है। गांधी जी और 'बा'

पति और घर के मालिक होने के नाते गांधी जी ने क्या उनका दुर्गुण छुपाया? गांधी जी ने वैसे भी कौन-सी बात छुपाई कि इसे छुपाते भला। गांधी जी और कस्तूरबा का निविड़ दांपत्य प्रेम हम सभी को अभिभूत करता है। प्रेम के उस महत स्तर तक पहुँचने के लिए दोनों को कितने संघर्ष और इम्तहानों से गुजरना पड़ा। पार्क में सहजता से घूमने की तरह वे दोनों अनायास एवरेस्ट के श्रृंग...

के बीच इस तरह के झगड़े होते थे, यह हम नहीं कह रहे हैं, हमारा कहना है कि दांपत्य के कलह को हल्के तौर पर लेना उचित नहीं है।

महात्मा इतने बड़े आदमी होने के बावजूद पत्नी के साथ झगड़ा करते थे तो फिर हम करें तो क्या गलत है? उनके और हमारे बीच में भिन्नता है।

हम झगड़ा करते चलते हैं, और वे दोनों उसका अतिक्रमण कर गए। महात्मा का अपने दोष-दुर्गुणों को हम सभी के सामने खोलकर रखने का कारण यही था कि वह यह बताना चाहते थे कि किस तरह से अपने दोषों के साथ मुकाबला करते थे और फिर उन पर किस तरह से विजय पाते थे और ये सब बातें हम जान जाएँ तो हम भी अपने दोषों को सुधारने की हिम्मत जुटा पाएँगे और दो कदम आगे बढ़ पाएँगे।

महात्मा की एक विशिष्टता यह भी थी कि तुम बिना डरे उनके सामने अहिंसा, सत्याग्रह, चरखा आदि की समालोचना करो, यहाँ तक कि उसकी हँसी उड़ाओ या विद्रूप उपहास करो, वह हँस देंगे। इन सब बातों में वह बहुत उदार और गणतांत्रिक थे। महात्मा के आदर्श और आंतरिक विश्वास के बारे में उनके आश्रम में खुल्लमखुल्ला आलोचना होती थी। आश्रमवासी जानते थे अहिंसा नीति या सूत कातना महात्मा के लिए नि:स्वास-प्र: श्वास की तरह था। फिर भी उन विषयों पर जिनके मन में जो भी भावना आती वे नि:संकोच गांधी जी के सामने व्यक्त करते थे। परंतु आश्रम के नीति-नियमों का पालन करने में गांधी जी कड़क हेडमास्टर थे। भोर में चार बजे उठना आश्रम का नियम था। अगर कोई इस नियम में थोड़ी-सी भी ढिलाई करता तो गांधी जी मुँह फुला लेते। अगर दो-चार आश्रमवासी किसी नियम को तोड़ते, तो शुरू हो जाता उनका अनशन।

उनके इस तरह के व्यवहार को समझना जरूर हमारे वश के बाहर है। जिस नीति, आदर्श के लिए आप पूरे जग में चर्चित हुए, जो विश्वास तुम्हारा बहुत प्रिय है, उन सब पर कोई प्रति आक्रमण करता तो आप जुबान नहीं खोलते न ही उसे अन्यथा लेते, परंतु पचास आश्रमवासियों के लिए तय किए गए नियमों में सामान्य व्यतिक्रम हो तो उग्रमूर्ति धारण कर लेते। घर चलाने के नीति, नियमों में वह बहुत सख्त थे और जिद्दी भी। अपने नीति, नियमों में कुछ भी व्यतिक्रम होने पर यह उनके लिए असह्य होता था। आश्रम उनके घर की तरह था। इसलिए उनका वहाँ कड़क हेडमास्टर होना स्वाभाविक है।

सास-ससुर या जेठ, जेठानी चाहे कितना भी प्यार मोहब्बत करते हों, फिर भी स्वतंत्र रूप से अपनी गृहस्थी चलाने की कामना हर नारी के मन में होती है। कस्तूरबा फिर इससे अलग कैसे हो जातीं? बच्चों को लेकर पति के साथ विदेश जाकर रहना होगा, जानकर वह बहुत खुश हुई। परंतु उन्हें क्या पता था कि पति ही ऐसे कड़क सास बन जाएँगे? मफसली चाल-चलन छोड़कर साहेबों की तरह फिटफाट रहना, उनकी तरह छुरे काँटे से खाना खाना, इन सबकी ट्रेनिंग जहाज में चढ़ने से पहले ही शुरू हो गई थी। कुछ भी हो गांधी डरबन के एक रईस इलाके में रहते हैं, बड़ा बंगला है। वहाँ जाकर अगर पत्नी-बच्चे गँवारों की तरह पेश होंगे, तो भारत छोड़ने से पहले गांधी जी ने तय कर लिया था कि कस्तूरबा और बच्चों को पारसी पोशाक पहनना होगा। वे यूरोपियों-सी पोशाक नहीं पहन सकते न ही मुसलमानों की तरह कपड़े पहन सकते हैं, इसलिए पारसी साड़ी पारसी तरीके से ही कस्तूरबा पहनेंगी और बच्चे पारसियों की तरह ट्राउजर और कोट पहनेंगे। उस पर जूता, मोजा तो जरूर पहनेंगे। डरबन में पारसियों का सम्मान था, उन्हें यरोपियन कुछ मर्यादा देते थे।

पत्नी और बच्चों के लिए काफी नए कपड़े लेकर और उन्हें नए कपड़े पहनाकर गांधी जी जहाज पर चढ़े। 'बा' पारसी साड़ी में अच्छी लग रही थीं।

पर पैरों में जूते! बच्चों को तो जूतों के साथ कपड़े विचित्र लग रहे थे। परंतु गांधी जी के डर से सभी चूँ-चाँ किए बगैर चेहरों पर हँसी लिए जहाज में बैठे रहे। कसा हुआ जूता और मोजा पहनकर बा को ऐसा लग रहा था मानो हर समय स्वतंत्र रूप से उछलकूद करने वाली गाय के गले में जैसे कोई जंजीर डाल दी गई हो। बच्चों की

हालत उनसे भी ज्यादा खस्ता थी। खाना खाने के समय चम्मच से खाना कैसे ठीक से खाया जाए, उस पर ही इतना ज्यादा ध्यान था कि भोजन का स्वाद कैसा था, पेट भरा या नहीं, यह सबकुछ सोचने का समय ही नहीं मिला।

कुछ समय बाद मोहन को समझ में आया कि साहेबों के तरीके से खाना हम भारतीयों के लिए अनावश्यक है। इसलिए काँटे चम्मच से खाने का कड़ा नियम हटा लिया गया। अपने पर परिहास करते हुए गांधी जी ने लिखा कि 'पर तब तक बच्चे छुरी, काँटा, चम्मच से खाना सीख चुके थे।'

मोहन के कुछ मित्र और अदालत के कुछ क्लर्क, मोहर्रिर उनके मकान में रहते थे। इतने लोगों के लिए खाना बनाना बा के लिए मुश्किल हो रहा था। इसलिए पत्नी की सहायता करने के लिए मोहन अंतरमहल में जाते। लेकिन सहायता कम उनकी हाकिमगिरी ज्यादा हो जाती। खाना बनाने से लेकर गृहिणी के बाकी जितने भी काम हों, सब उनके निर्देशानुसार होने चाहिए। बा को इससे काफी तकलीफ होती। परंतु मोहन का एक आदेश बा के लिए असह्य हो गया। रात में लघुशंका के लिए हर एक के कमरे में एक बर्तन रख दिया जाता था। उस पात्र को जो व्यवहार करता, सुबह उसे साफ करने की जिम्मेदारी भी उसी व्यक्ति की होनी चाहिए किंतु मेहमान इस काम को कैसे करें? बिना कोई काम के जो हर दिन किसी के घर में रहता है, उसे अतिथि कहा जाए या कुछ और। इस बारे में आलोचना करने का अधिकार महात्मा की नजर में हम सभी को है, तो फिर बा को क्यों नहीं? जो भी कहें, सुबह उठकर उन पात्रों को साफ करने की जिम्मेदारी मोहन और बा की थी। इस काम को करने में बा को घोर आपत्ति थी। फिर भी उन्हें करना पड़ता था वह भी हँसते हुए, क्योंकि उन पात्रों को साफ करते समय किसी भी तरह की खिन्नता या मुरझाया चेहरा मोहन को नजर नहीं आना चाहिए।

मोहन के घर में एक अछूत जाति का आदमी रहता था। उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था, परंतु बा की नजर में वह अछूत थे। अभी भी भारत के ईसाइयों में जातिगत भेदभाव है। हरिजन ईसाई और सवर्ण ईसाई। इस भेदभाव का सिर्फ हिंदू ही नहीं, धर्मांतरित ईसाई भी ध्यान रखते हैं। छोड़िए, इस देश से इस घोर जातिगत भेदभाव को दूर करने के लिए एक बार फिर महात्मा का जन्म लेना जरूरी है। उस अछूत ईसाई के मूत्रपात्र को साफ करते समय बा रो देतीं। उनका रोना देखकर मोहन का पारा चढ़ जाता। मन में सोचते, काम को खुशी मन से न करके यह मूर्ख रो क्यों रही है? चाहे जो हो करना तो पड़ेगा ही, तो फिर हँसकर कर देने से स्वामी देवता संतुष्ट होंगे क्या यह तुझे पता नहीं है?

मोहन के कुछ मित्र और अदालत के कुछ क्लर्क, मोहर्रिर उनके मकान में रहते थे। इतने लोगों के लिए खाना बनाना बा के लिए मुश्किल हो रहा था। इसलिए पत्नी की सहायता करने के लिए मोहन अंतरमहल में जाते। लेकिन सहायता कम उनकी हाकिमगिरी ज्यादा हो जाती। खाना बनाने से लेकर गृहिणी के बाकी जितने भी काम हों, सब उनके निर्देशानुसार होने चाहिए। बा को इससे काफी तकलीफ होती। परंतु मोहन का एक आदेश बा के लिए असह्य हो गया। रात में लघुशंका के लिए हर एक के कमरे में एक बर्तन रख दिया जाता था।

एक दिन कस्तूरबा रो रही थीं। मोहन उन्हें रोता देखकर चिल्लाने लगे, कहा– 'मेरे घर में इस तरह रोने–धोने का तमाशा नहीं चलेगा।' कस्तूरबा ने भी चिल्लाते हुए जवाब दिया– 'तुम अपना घर सँभालो, मुझे छोड़ दो।' बस इतना सुनना था कि मोहन गुस्से से तमतमाते हुए बा की बाँह पकड़कर उन्हें खींचते हुए गेट के पास ले गए और गेट खोलकर बाहर की तरफ उन्हें धक्का देने लगे। बा उनकी इस हरकत पर रोते हुए कहती रहीं– 'क्या तुममें थोड़ी–सी भी शरम बाकी नहीं है? यहाँ मेरे माँ, बाप, भाई–बंधु कौन हैं? मैं किसके पास जाऊँगी? तुम्हें ईश्वर की कसम, तुम इस तरह अमानवीय मत बनो। बाहर इस तरह तमाशा खड़ा करना क्या ठीक लग रहा है?' मोहन को तब होश आया।

यह क्या महात्माओं का आचरण था? इस बात से कोई भी सहमत नहीं होगा। परंतु इस घटना के समय मोहन तीस साल के युवक थे। महात्मा होने के लिए उनके आगे एक लंबा रास्ता था।

यह घटना पत्नी के प्रति अविचार को ही दर्शाती है। क्या यही सही है? मोहन की हरिजनों के प्रति जो आंतरिकता थी, क्या यह वाकिया उस श्रद्धा को व्यक्त नहीं करता है? हरिजन, अछूतों के प्रति गांधी जी की श्रद्धा! अब लोगों में उनकी इस श्रद्धा को लेकर विवाद उठ रहे हैं। उन्हें हरिजन न कहकर अगर अछूत कहते तो उनके प्रति गांधी जी की पूर्ण सहानुभूति थी, यह पता चलता। धन्य है इस तरह के तर्क का। उन्हें गांधी जी क्या कहते थे इसमें दिमाग न लगाकर (दिमाग क्यों न लगाएँ? राजनीति तुम क्या समझो ?) उन्होंने उन लोगों के लिए क्या किया था, अपने जीवन में छुआछूत का भाव रखा या नहीं, उस तरफ तो नजर डाल लें। हरिजन की सेवा प्रसन्नचित्त से न करने के लिए जो व्यक्ति अपनी पत्नी तक को घर से निकालने जा रहा था.....।

यह घटना क्या मोहन की मासूमियत, किसी को भी पराया न समझने की उनकी मनोभावना को नहीं दर्शाती है? वह अपनी पत्नी से अपने को अलग नहीं समझते थे, क्या इसका आभास नहीं मिलता है? आपस में उसी गहरे प्रेम के बल पर दोनों ऊपर उठते गए।

क्रोध और ईर्ष्या से जर्जरित विश्वामित्र ने धीरे-धीरे वशिष्ठ की महत्ता को समझकर एक दिन भावावेश में उन्हें ब्रह्मर्षि कहकर संबोधित किया। गांधी जी को इस विशाल देश के जनसमूह ने 'महात्मा' कहकर संबोधित किया। और ऐसा कब हुआ, उसके मुहूर्त, दिन वार, लग्न का निर्णय नहीं किया जा सकता। गांधी जी के अन्यतम विशिष्ट जीवनी लेखक विनसेंट सिहान का बापू के साथ घनिष्ठ संबंध था और साथ में उस समय के सभी बड़े नेताओं के साथ उनकी मित्रता थी। उन्होंने लिखा है कि 'महात्मा' शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई, काफी प्रयास करने पर भी उसका मूल ढूँढ़ पाने में वे विफल रहे। 'महात्मा' की उपाधि कई लोगों के साथ प्रयोग हुई है, पर एक बार गांधी जी के नाम के साथ जुड़ जाने के बाद भविष्य में किसी और के नाम के पीछे फिर यह उपाधि नहीं लग सकेगी। महात्मा कहने से पूरी पृथ्वी के लोग गांधी जी को समझते हैं और भविष्य में भी समझेंगे।

जो भी हो, महात्मा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई? 1916 के टेलीग्राम में कविगुरु ने गांधी जी को 'महात्मा' कहकर संबोधित किया था। बेशक गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के द्वारा गांधी को महात्मा पुकारने पर उसी नाम से गांधी जी का सुपरिचित हो जाना स्वाभाविक था। परंतु 1916 से पहले ही लोग उन्हें महात्मा कहकर पुकारना शुरू कर चुके थे। सरोजिनी नायडू ने कहा था कि 1914 में लंदन में गांधी जी से पहली बार मुलाकात के समय से ही 'महात्मा' संबोधन उनके कानों में पड़ा है। दक्षिण अफ्रीका से गांधी जी लंदन होकर भारत लौटे। यानी उनके भारत में पहुँचने से पहले ही इस देश की मिट्टी में महात्मा शब्द अंकुरित हो चुका था। 1916 में गांधी जी के साथ पंडित नेहरू की पहली मुलाकात हुई थी। पंडित नेहरू का कहना था कि 1916 से कुछ वर्ष पूर्व से गांधी जी के नाम के साथ 'महात्मा' शब्द जुड़ चुका था। सभी के अनजाने में भारतवर्ष की चेतना में से महात्मा शब्द ने जन्म लिया। कुछ लोग पहले उन्हें महात्मा कहने लगे, फिर धीरे-धीरे यह संबोधन प्रसारित होने लगा। क्योंकि जनता का संबोधन ओंकार नाद की तरह है, शंखध्वनि की तरह है। 'ॐ' नाद खूब धीमी आवाज में शुरू होकर धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। उसका एक पल में सभी को सुनाई न देना स्वाभाविक है। जनता का संबोधन धीमी आवाज में शुरू होकर धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और आखिर में उसी आवाज में धरती-आकाश गूंज उठता है। उस आवाज को कोई धीमी आवाज के समय सुन लेता है तो किसी को आकाश गूंजने तक इंतजार करना होता है। महात्मा संबोधन एक समय में सभी को सुनाई नहीं दिया है, आगे-पीछे सुनाई दिया है।

मातृभाषा में सीखना आनंदप्रद है

डॉ शुभंकर मिश्र

आमतौर पर यह माना जाता है कि अपनी भावनाओं को मातृभाषा या प्रथम–भाषा में व्यक्त करना अधिक प्रभावी होता है, और इससे इतर भाषा का उपयोग करना अक्सर बुद्धि का प्रतिबिंब माना जाता है। मातृभाषा यानी वह पहली भाषा जिसे हम जन्म से सीखते हैं, हमारे आसपास की दुनिया को समझने–बूझने में काफी मददगार होती है 'यह दरअसल अब एक सर्व–स्वीकार्य तथ्य है कि जो व्यक्ति अपनी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे आम तौर पर जीवन में शैक्षणिक रूप से बेहतर प्रदर्शन करते हैं' नए वैश्विक शिक्षा एजेंडे में अब सभी के लिए गुणता, समानता और निरंतर सीखने को प्राथमिकता मिल रही है ताकि भाषिक विविधता और समावेशी समाज के निर्माण की भावना को बल मिल सके'।

विश्व मातृभाषा दिवसः बहुभाषावाद की ओर एक सार्थक पहल

भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देने के लिए यूनेस्को द्वारा प्रतिवर्ष 21 फरवरी को 'विश्व मातृभाषा दिवस' मनाया जाता है। यूनेस्को ने पहली बार इस दिन की घोषणा 17 नवंबर, 1999 को की थी और इसे पहली बार 21 फरवरी, 2000 से मनाना आरंभ किया गया था। बाद में, सन 2002 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक संकल्प द्वारा इस दिवस को आधिकारिक तौर पर मान्यता दी। विश्व अब इस दिवस को प्रतिवर्ष बहुभाषावाद और मातृभाषा के मुद्दे पर जागृति निर्माण और अपनी कटिबद्धता प्रदर्शित करने के एक अवसर के रूप में देख रहा है'।

विश्व मातृभाषा दिवसः इतिहास और इसका महत्व

इतिहास में 21 फरवरी का यह दिन एक दुखद घटना की याद भी दिलाता है, जब आधिकारिक भाषा के रूप में 'बांग्ला' का उपयोग करने के अधिकार के लिए लड़ते हुए पड़ोसी मुल्क बांग्लादेश में अनेकों को अपनी जान गंवानी पड़ी थीं । वर्षों के प्रयास के बाद, पाकिस्तानी सरकार ने 'बांग्ला' भाषा के महत्व को पहचाना। आखिरकार सन 1956 में इसे आधिकारिक दर्जा मिला। बांग्लादेश की 21 फरवरी सन 1942 की यह घटना हमें संवाद, भाषा और अपनी मातृभाषा के महत्व की याद दिलाती है।

मातृभाषा यानी वह पहली भाषा जिसे हम जन्म से सीखते हैं, हमारे आसपास की दुनिया को समझने–बूझने में काफी मददगार होती है 'यह दरअसल अब एक सर्व–स्वीकार्य तथ्य है कि जो व्यक्ति अपनी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे आम तौर पर जीवन में शैक्षणिक रूप से बेहतर प्रदर्शन करते हैं' नए वैश्विक शिक्षा एजेंडे में अब सभी के लिए गुणता, समानता और निरंतर सीखने को प्राथमिकता मिल रही है...।

विश्व मातृभाषा दिवस का आयोजन भाषा के महत्व और उसके इतिहास को जानने – समझने के लिए बेहद जरूरी है। यह आंदोलन बेशक कभी बांग्ला भाषा के महत्व पर केन्द्रित था पर आज, इस दिन का आयोजन 'बांग्ला' भाषा से कहीं आगे बढ़ गया है' दुनिया भर में अब यह मातृभाषा और बहुभाषावाद के महत्व पर बल देता है' 'विश्व मातृभाषा दिवस' विश्व स्तर पर बोली जाने वाली सभी भाषाओं के संरक्षण की बात करता है और दुनिया भर के लोगों को एक विविध और समावेशी समाज निर्माण के लिए प्रेरित करता है'।

'विश्व मातृभाषा दिवस' दुनिया भर के लोग एक निर्धारित लक्ष्य की दिशा में काम करें, इस उद्देश्य से हर साल, एक नई 'थीम' पर मनाया जाता है'। यह दिवस, हमें मातृभाषा के साथ-साथ बहुभाषावाद को बढ़ावा देने वाले विभिन्न मुद्दों पर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

इसमें अब कोई दो राय नहीं कि स्वदेशी भाषाएं, हमारे चतुर्दिक विकास, वैश्विक शांति और सुलह के लिए मायने रखती है। अपने शुरुआती विमर्श से लेकर अब तक यूनेस्को 'विश्व मातृभाषा दिवस' के...।

संयुक्त राष्ट्र (यूएन) की विश्व की भाषाओं पर एक रिपोर्ट, हमें भाषाओं पर मंडरा रहे खतरे की ओर आगाह करती है, जिसके अनुसार अमूमन हर दो सप्ताह में हमारी एक भाषा लुप्त हो जाती है'। यह हम सबके लिए एक चिंता का सबब है, क्योंकि इससे संस्कृतियों और परंपराओं को हमेशा के लिए खो जाने का खतरा बन जाता है। बदकिस्मती से दुनिया की 40% आबादी को उस भाषा में शिक्षा की बुनियादी सुविधा उपलब्ध नहीं है, जिसे वे समझते हैं'। यह समस्या दरअसल मातृभाषा के प्रश्न से जुड़ा हुआ है, जिससे खासकर गरीब पृष्ठभूमि के बच्चों की शिक्षा पर नकारात्मक असर पड़ता है ।

'विश्व मातृभाषा दिवस' दुनिया भर के लोग एक निर्धारित लक्ष्य की दिशा में काम करें, इस उद्देश्य से हर साल, एक नई 'थीम' पर मनाया जाता है'। यह दिवस, हमें मातृभाषा के साथ-साथ बहुभाषावाद को बढ़ावा देने वाले विभिन्न मुद्दों पर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

इसमें अब कोई दो राय नहीं कि स्वदेशी भाषाएं, हमारे चतुर्दिक विकास, वैश्विक शांति और सुलह के लिए मायने रखती है। अपने शुरुआती विमर्श से लेकर अब तक यूनेस्को 'विश्व मातृभाषा दिवस' के अवसर पर अब तक विभिन्न मुद्दों पर हमें विमर्श का अवसर प्रदान करती रही है, मसलन 'सीमाओं के बिना भाषाएं' (2020), शिक्षा और समाज में समावेश के लिए बहुभाषावाद को बढ़ावा (2021), बहुभाषी बनने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करना: चुनौतियां और अवसर' (2022), 'बहुभाषी शिक्षा: शिक्षा को बदलने की आवश्यकता' (2023) आदि-आदि 'वर्ष 2024 में' विश्व मातृभाषा दिवस' का विषय 'बहुभाषी शिक्षा अंतर-पीढ़ीगत शिक्षा का एक स्तंभ है,' रहा, जो पूरे विश्व में बहुभाषी शिक्षा (MLE) की अहमियत और इसकी जरूरतों पर बल देता है। इस वर्ष 2025 में यूनेस्को द्वारा 'विश्व मातृभाषा दिवस' की रजत जयंती मनाई जा रही है, जो भाषिक विविधता और समावेशिता की दृष्टि से एक और मील का पत्थर है।

'विश्व मातृभाषा दिवस' का दायरा भाषा के प्रचार-प्रसार से कहीं अधिक व्यापक है। यह संयुक्त राष्ट्र के सतत-विकास के लक्ष्य (SDG) 4.6 का समर्थन करता है, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विश्व स्तर पर युवाओं और वयस्कों की आबादी में हर कोई, बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान का कौशल अर्जित कर सके। बुनियादी साक्षरता और अंकज्ञान का कौशल दरअसल व्यक्तिगत विकास के लिए तो आवश्यक है ही, बल्कि हमारे समाज और दुनिया की प्रगति के लिए भी विशेष रूप से महत्व रखता है।

समावेशी भाषा शिक्षा नीतियों से न केवल सीखने के स्तर को बढ़ावा मिलता है, बल्कि सहिष्णुता, सामाजिक एकजुटता और अंततः इससे वैश्विक शांति स्थापित करने में भी मदद मिलती है। यह दिवस दरअसल एक विविधतापूर्ण और समावेशी समाज के निर्माण में मातृभाषाओं के उपयोग की वकालत करता है और लोगों को उनसे विभिन्न कौशलों में दक्षता हासिल करने की बात करता है।

बहुभाषावाद की दिशा में भारत के प्रयास

भारत में प्राचीन और आधुनिक भाषाओं की विविधता सहज देखी जा सकती है। यह देश की राष्ट्रीय पहचान का एक अहम हिस्सा है। भारत सरकार बहुभाषावाद को बढ़ावा देने और अपनी समृद्ध भाषाई विविधता को संरक्षित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठा रही है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, सरकार भारतीय भाषाओं के शिक्षण और सीखने को स्कूलों और उच्च शिक्षा में विशेष ध्यान दे रही है और इस क्रम में विविध स्तरों पर पाठ्य-सामग्री का निर्माण कर रही है, शब्दावली और शब्दकोशों को अद्यतन कर रही है और विभिन्न संस्थानों के माध्यम से शिक्षकों की क्षमता विकसित करने में जुटी है।

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020, एक ऐसी शिक्षा प्रणाली के लिए अभिनव सोच है, जिसकी जड़ें भारत के लोकाचार और ज्ञान-परंपरा से जुड़ी हुई हैं, बहुभाषावाद से जुड़ी हैं और जिसका मकसद एक गतिशील और न्यायसंगत ज्ञान समाज के विकास पर बल देना है 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 का उद्देश्य भारतीय भाषाओं में शिक्षा पर जोर देकर और युवाओं के बीच भारतीय ज्ञान प्रणाली (आईकेएस) को बढ़ावा देकर एक विकासमूलक शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य निर्धारित करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत कम से कम ग्रेड 5 के लिए शिक्षा के माध्यम के रूप में बच्चे की घरेलू भाषा या मातृभाषा का उपयोग करने के महत्व पर जोर डाला गया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि छात्र अवबोधन के स्तर पर अपनी एक मजबूत नींव विकसित करें। यह बहुभाषा और मातृभाषा अपनाने की दिशा में उठाया गया एक सार्थक कदम है, जो बुनियादी तौर पर पढ़ने-पढ़ाने में 'सीखने के आनंद' पर बल देता है ।

सरकार भारत की लुप्तप्राय भाषाओं की सुरक्षा और संरक्षण के लिए भी प्रतिबद्ध है। विभिन्न प्रयासों के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जा रहा है कि प्रत्येक छात्र अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करे। बहुभाषावाद के प्रति भारत सरकार का समर्पण विविधता में एकता को बढ़ावा देने के हमारे दृढ़ संकल्प को दर्शाता है।

बहुभाषावादः कर्त्तव्य-पथ

आज के दौर में एक से अधिक भाषाओं में संवाद-कौशल की जितनी सराहना की जाए, वह कम ही है। बहुभाषिक कौशल का संबंध दरअसल एक ऐसी भाषिक क्षमता से और एक ऐसे भाषिक कौशल से है, जो आज के प्रगतिशील समाज के लिए निहायत जरूरी है'

दक्षिण अफ्रीका के पहले राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला ने कहा है, 'यदि आप किसी व्यक्ति से उसकी उस भाषा में बात करते हैं, जिसे वह समझता है, तो यह उसके मस्तिष्क से नियंत्रित होता है और यदि आप उससे उसकी मातृभाषा में बात करते हैं, तो वह उसके दिल तक पहुँचती है।'

हमारी सांस्कृतिक और भाषाई विविधता एक अनमोल उपहार है 'अपनी मातृभाषा में बोलना, सुनना, पढ़ना और लिखना हमें अपनी विरासत, संस्कृति और अस्मिता पर गर्व का बोध कराती है और इससे कहीं बढ़कर, यह हमें एक दूसरे को अधिक गहराई से जानने-समझने का अवसर देती है।

तो आइए ! क्यों न फिर हम अपनी मातृभाषा और बहुभाषाओं पर गर्व करें और इसे अपनी-संवाद की भाषा बनाएं। हम साथ मिलकर, एक ऐसी दुनिया और एक ऐसी फिजा बना सकते हैं, जहाँ भाषाई विविधता और एक दूसरे को जानने-समझने की भावना को सम्मान किया जाता हो और इन्हें सराहा जाता हो। विश्व मातृभाषा दिवस के अवसर पर अभिनंदन!

(लेखक भारत सरकार के एक अधिकारी हैं, और इस समय विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस में उप महासचिव के रूप में देश का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।)

विचार

उच्च शिक्षा में सुधार की दिशा

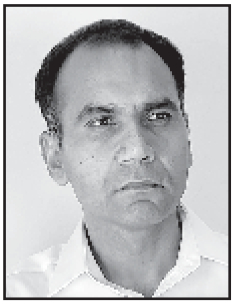

प्रो. रसाल सिंह

6 जनवरी, 2025 को केन्द्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो. एम. जगदीश कुमार की उपस्थिति में ड्राफ्ट रेगुलेशन-2025 जारी किया था। यह उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मियों की नियुक्ति और प्रोन्नति सम्बन्धी न्यूनतम अर्हता सुनिश्चित करने और उनकी सेवाशर्तों, शिक्षण एवं शोध कार्यभार, पेशेवर आचार-संहिता आदि से सम्बंधित है। इस मसौदे पर फीडबैक/प्रतिक्रिया देने के लिए शिक्षकों, शैक्षणिक प्रशासकों और छात्रों आदि सम्बंधित हितधारकों को एक माह की समय सीमा दी गयी थी, जिसे 28 फरवरी तक बढ़ा दिया गया है। हितधारकों से सुझाव मांगने, उन पर विचार-विमर्श करके नियमावली को अंतिम रूप देने की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की यह पहल स्वागतयोग्य और सराहनीय है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वर्तमान अध्यक्ष एम जगदीश कुमार ने हितधारकों से सुझाव/फीडबैक लेने की अच्छी परंपरा शुरू की है।

इस ड्राफ्ट रेगुलेशन के जारी होने के 10 दिन बाद ही केंद्र सरकार ने आठवें वेतन आयोग की घोषणा कर दी थी। उल्लेखनीय है कि केंद्र सरकार द्वारा गठित/घोषित प्रत्येक वेतन आयोग की संस्तुतियों के मद्देनजर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा क्षेत्र से सम्बंधित शिक्षकों और अन्यान्य कर्मियों की सेवाशर्तों, वेतन-भत्तों आदि के सम्बन्ध में पुनरीक्षण समिति का गठन करके उन्हें अद्यतन और समीचीन बनाता रहा है। आठवें वेतन आयोग की दहलीज पर ड्राफ्ट रेगुलेशन-2025 का जारी किया जाना समस्त हितधारकों को हतप्रभ करता है और उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में गंभीरता, निरंतरता और दूरगामी दृष्टि (विजन) के अभाव को इंगित करता है। निश्चय ही, किसी भी क्षेत्र में समयानुकूल परिवर्तन अपेक्षित और आवश्यक होता है, लेकिन लगातार परिवर्तन नीतिगत निरन्तरता को अवरोधित करके विभ्रम और अव्यवस्था पैदा करता है। अभी तक रेगुलेशन-2018 को ही लागू करने की कवायद जारी है। इसलिए यह अवसर यू.जी.सी. रेगुलेशन-2018 की विसंगतियों (एनोमलीज) को दुरुस्त करने का था। 4-5 वर्ष के अंदर एकदम से आमूल-चूल परिवर्तन करते हुए नयी नियमावली का मसौदा जारी करना समस्त हितधारकों को

उल्लेखनीय है कि केंद्र सरकार द्वारा गठित/घोषित प्रत्येक वेतन आयोग की संस्तुतियों के मद्देनजर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा क्षेत्र से सम्बंधित शिक्षकों और अन्यान्य कर्मियों की सेवाशर्तों, वेतन-भत्तों आदि के सम्बन्ध में पुनरीक्षण समिति का गठन करके उन्हें अद्यतन और समीचीन बनाता रहा है। आठवें वेतन आयोग की दहलीज पर ड्राफ्ट रेगुलेशन-2025 का जारी किया जाना समस्त हितधारकों को हतप्रभ करता है।

चिंतित और भ्रमित करता है। उच्च शिक्षा को चकरघिन्नी नहीं बनाया जाना चाहिए। नीतिगत तात्कालिकता और अस्थिरता से व्यवस्था-तन्त्र बर्बाद होता है। उच्च शिक्षा क्षेत्र के सम्बन्ध में दूरगामी दृष्टि (विजन) और नीतिगत निरन्तरता अत्यंत आवश्यक है। रेगुलेशन-2018 की विसंगतियों/समस्याओं पर विचार करने और उनका समाधान करने के लिए कई साल पहले एक एनोमलीज समिति बनाई गयी थी। लेकिन आजतक उसकी रपट का कोई अता-पता नहीं है। इस दिशा में कोई प्रगति न होने से हितधारकों में निराशा का वातावरण है।

घोषित मसौदे में प्रतिभाओं के संरक्षण और प्रोत्साहन का दावा तो किया गया है, लेकिन उसका कोई विश्वसनीय और सुचिंतित रोडमैप दिखाई नहीं पड़ता है। उच्च शिक्षा परिदृश्य को प्रतिस्पर्धी और पेशेवर बनाने के लिए प्रतिभाशाली और परिश्रमी लोगों के लिए 'मीडियोकरों' से अलग प्रावधान किये जाने चाहिए। ड्राफ्ट रेगुलेशन में शिक्षकों की नियुक्ति में स्नातक और स्नातकोत्तर के विषय की महत्ता कम करते हुए पीएचडी वाले विषयों में नियुक्ति की छूट दी गयी है। अंतर-अनुशासनिकता को प्रोत्साहित करने के लिए प्रस्तावित यह निर्णय अकादमिक जगत में अराजकता की शुरुआत करेगा। यह विषय विशेष से पढ़े हुए अभ्यर्थियों को अन्य विषय में शिक्षक बनने का रास्ता खोल देगा। इसी प्रकार चार वर्षीय स्नातक करने वाले छात्रों को भी कॉलेजों/विश्वविद्यालयों में शिक्षक बनने का अवसर देना अकादमिक गुणवत्ता में गिरावट लायेगा। रेगुलेशन-2018 में विश्वविद्यालय में शिक्षक बनने के लिए पीएचडी की अनिवार्यता का प्रावधान किया गया था, क्योंकि विश्वविद्यालय के शिक्षकों को अध्यापन से अधिक शोध-कार्य करना होता है। इस प्रावधान को विभिन्न आदेश-पत्रों के माध्यम से टाला जाता रहा और अंततः समाप्त कर दिया गया है। विश्वविद्यालय में शिक्षकों की नियुक्ति में पीएचडी की अनिवार्यता आवश्यक होनी चाहिए। उन्हें स्नातकोत्तर स्तरीय छात्रों को पढ़ाना और लघु शोध परियोजनाओं पर काम कराना होता है। वे कोर्स वर्क के तहत पीएचडी शोधार्थियों को शोध प्रविधि, शोध/प्रकाशन संबंधी नैतिकता आदि पाठ्यक्रम पढ़ाते हैं और उन्हें शोध कराते हैं। भला चार वर्षीय स्नातक या स्नातकोत्तर किए हुए प्राध्यापक ऐसा कैसे करा पाएंगे?

इसी प्रकार प्रकाशन की गुणवत्ता के सम्बन्ध में केअर लिस्टेड/स्कोपस इंडेक्स्ड जर्नल की आवाजाही लगी रही है। यूजीसी केअर लिस्टेड जर्नलों की सूची में भी बार-बार बदलाव किया जाता रहा है। यह बार-बार की छेड़छाड़ अनिश्चितता पैदा करती है। अब उसकी अनिवार्यता भी समाप्त कर दी गयी है। पुस्तक के अध्यायों को ही शोध-पत्रों के समकक्ष दर्जा दे दिया गया है। यह चिंताजनक है। यह निर्णय स्तरीय शोधकार्य की कब्रगाह साबित होगा।

दरअसल, कॉलेज के शिक्षक और विश्वविद्यालय के शिक्षक का काम काफी हद तक अलग होता है। इसीलिए कॉलेज के शिक्षक की प्रोन्नति को पठन-पाठन केंद्रित और विश्वविद्यालय के शिक्षक की प्रोन्नति को शोध केंद्रित बनाया जाना चाहिए। सामान्य से बहुत अच्छा कार्य करने वाले और विशेष उपलब्धियां अर्जित करने वालों के लिए अतिरिक्त इंक्रीमेंट, समय-पूर्व प्रोन्नति जैसे प्रावधान किए जाने चाहिए। शिक्षकों की आठ घंटे संस्थान में अनिवार्य उपस्थिति संबंधी प्रावधान भी अनुचित है। इससे गुणवत्ता और उत्पादकता नकारात्मक रूप से प्रभावित होगी। संस्थान की उत्पादकता बढ़ाने, पठन-पाठन प्रक्रिया को सुचारू और रोचक बनाने के लिए सकारात्मक वातावरण बनाना आवश्यक है। यह सुनिश्चित करने के लिए उसके 'हैप्पीनेस इंडेक्स' को बढ़ाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। आज अधिकांश कॉलेज और विश्वविद्यालय राजनीति के अखाड़े बन गए हैं। यह अति-लोकतांत्रिकता का सह-उत्पाद (बाइ-प्रॉडक्ट) है। निर्वाचित विधायी संस्थाओं और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की आड़ में निहित स्वार्थ जीभर राजनीति का खेल खेलते हैं और इन प्रावधानों का भरपूर दोहन और दुरुपयोग करते हैं। परिणामस्वरूप, शिक्षक समुदाय कर्तव्य-विमुख और अति अधिकार-सचेत भीड़ बनता जा रहा है। यह स्थिति स्वस्थ और शुभकर नहीं है। इस बीमारी का उपचार आवश्यक है। बाह्य याकि प्रशासनिक नियमन की अपेक्षा स्व-नियमन याकि अनुशासन बेहतर विकल्प है।

अभ्यर्थी के विभिन्न अकादमिक परीक्षाओं के अकादमिक परिणाम, शोध-कार्य और प्रकाशन आदि को महत्व देने और साक्षात्कार की भूमिका सीमित करने के सम्बन्ध में भी कोई पारदर्शी, वस्तुपरक और न्यायसंगत नीति नहीं बनायी गयी है। सर्वशक्तिमान चयन-समिति केन्द्रित नियुक्ति-प्रक्रिया को समय और सुविधानुसार तोड़ा-मरोड़ा जाता रहा है। वस्तुपरकता, पारदर्शिता, नीतिगत निरन्तरता और दूरदर्शिता का अभाव उच्च शिक्षा का श्मशान घाट है। एकबार फिर अभ्यर्थी की अकादमिक उपलब्धियों को नजरन्दाज करते हुए वायवीय, अस्पष्ट और अमूर्त्त मानकों के आधार पर उसका मूल्यांकन करने का अधिकार चयन समिति को दे दिया गया है। अकादमिक उपलब्धियों सम्बन्धी वस्तुपरक और सुपरिभाषित मानदंडों के स्थान पर नियुक्ति-प्रक्रिया को चयन समिति केन्द्रित बना दिया गया है। प्रकाशन की गुणवत्ता के निर्धारण से लेकर अंतिम चयन तक वही सर्वशक्तिमान होगी। यह किसी से छिपा नहीं है कि अकादमिक दुनिया जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद और परिवारवाद से सड़ांधग्रस्त है। संपर्कों-सम्बन्धों और लेन-देन के अभाव में योग्यतम अभ्यर्थी साक्षात्कार देते-देते बूढ़े हो जाते हैं, लेकिन कोई उनकी सुधि लेने वाला नहीं होता है। अकादमिक उपलब्धियों से इतर साम, दाम, दंड, भेद आदि हथकंडे ही प्रायः नियुक्ति का आधार बनते हैं। इसके लिए कोई व्यक्ति दोषी नहीं है। यह विषवृक्ष का बीजवपन नेहरू युग में ही हो गया था। परिदृश्य क्रमशः भयावह और विकराल होता गया है। आज व्यवस्था पूरी तरह दूषित हो गई है और वह प्रतिभा और योग्यता की संहारक बन गयी है। विषाक्त और भ्रष्ट व्यवस्था ने युवा पीढ़ी को परिश्रम और पढ़ाई-लिखाई से विमुख कर दिया है। सेटिंग-प्लॉटिंग, नेटवर्किंग और बटरिंग जैसे दांव-पेंच उच्च शिक्षा में सफलता की गारंटी बनते जा रहे हैं। शोधार्थी/अभ्यर्थी पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की जगह शिक्षक संगठनों और नेताओं की 'गुलामगिरी' कर रहे हैं। उनके मन में यह बात बैठ गई है कि उनका कारिंदा या कार्डहोल्डर होना ही कल्याणकर है। पॉवरब्रोकर भाग्यविधाता बन बैठे हैं। उँगलियों पर गिनने लायक व्यक्ति, संगठन और संस्थान ही इस महामारी से बचे हुए हैं। इस प्रकार के हथकंडों को अपनाकर नियुक्ति पाने वाले सिफारिशी 'आचार्य' कैसा और कितना पढ़ाएंगे? गुलामी करके नौकरी पाने वाले कितना स्वतंत्र और मौलिक चिंतन और शोध करेंगे; यह विचारणीय है। यह अनुमान लगाना कोई मुश्किल कार्य नहीं है कि इन 'आचार्यों' के भरोसे विश्वगुरू बनना असंभव ही है। शोध की गुणवत्ता गिर रही है और थीसिसों का पहाड़ बढ़ रहा है। असंख्य युवाओं को पीएचडी कराने का औचित्य भी समझ से परे है। इस परिदृश्य को बदलने की जरूरत है। योग्यतम व्यक्ति को शिक्षण का दायित्व देकर और पठन-पाठन के अनुकूल परिस्थितियां और वातावरण बनाकर ही विकसित भारत के संकल्प को साकार किया जा सकता है।

उच्च शिक्षा क्षेत्र जिस दिशा में जा रहा है, अगर तत्काल हस्तक्षेप करके उसका दिशा परिवर्तन नहीं किया गया तो सरकारी कॉलेज और विश्वविद्यालय सरकारी स्कूलों की तरह उजड़ जायेंगे। आज सरकारी स्कूलों में मजदूरों और मजबूरों के ही बच्चे पढ़ते हैं। वे वहां मिड डे मील, मुफ्त ड्रेस, किताब-कॉपी और वजीफे के लालच में नामांकन कराते हैं। क्या हम चाहते हैं कि हमारे देखते-देखते हमारे कॉलेज और विश्वविद्यालय भी वीरान हो जाएँ? आज मध्यवर्गीय अभिभावक अपने बच्चों को प्रतिष्ठित रहे सरकारी विश्वविद्यालयों की जगह विदेशी विश्वविद्यालयों याकि प्राइवेट विश्वविद्यालयों में भेजने लगे हैं। यह सरकारी संस्थानों से प्रतिभा पलायन का प्रारंभ है। इन विदेशी विश्वविद्यालयों/प्राइवेट विश्वविद्यालयों की फीस प्राइवेट स्कूलों की ही तरह है। लेकिन मरता, क्या न करता....! लोग अपने बच्चों का भविष्य बनाने की चाह में अपना पेट और जेब दोनों कटवाने को विवश हैं। जो समर्थ हैं, समृद्ध हैं वे तो अपने बच्चों को अच्छे निजी या विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ा लेंगे। लेकिन गरीब, किसान, मजदूर, दलित, पिछड़े कहां जाएंगे? क्या सरकारी संस्थानों के उजड़ने से इन समुदायों के जीवन में फिर अज्ञानता, अंधविश्वास और अंधेरा नहीं पसर जाएगा?

अलग-अलग संस्थान अपनी-अपनी दुकानों में 'स्वायत्तता' के नाम पर मनमानी कर रहे हैं। स्वायत्तता

अकादमिक गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए दी गयी थी, किन्तु समयांतराल में उसकी आड़ में नियुक्तियों की बंदरबांट ही हुई है। वर्तमान नियुक्ति प्रक्रिया में सर्वाधिकार संपन्न चयन समिति के सदस्य अपने छात्रों/शोधार्थियों का झटपट साक्षात्कार लेते हैं और उनकी "मेरिट" का चटपट आकलन करते हुए उनका चयन कर लेते हैं। क्या उस व्यवस्था में निष्पक्षता और न्याय संभव है जहां साक्षात्कार लेने वाला और देने वाला एक-दूसरे को वर्षों से जानते हैं? साक्षात्कार देने वाले लेने वाले या उसके गिरोह के घर में राशन-पानी पहुंचाने, रेल/जहाज के टिकिट कराने, मुखबिरी और जी-हुजूरी करने में सिद्धहस्त होते हैं। वे न सिर्फ 'सर' की बल्कि 'मैडम' की भी सेवा-चाकरी करते हैं। पोस्टर-पैंपलेट चिपकाने/बांटने और नारेबाजी/अड्डेबाजी में इन भावी/नव आचार्यों की महारत है। अकादमिक जगत के ये नव-लठैत शिक्षा-व्यवस्था को सुबह से शाम तक लहूलुहान करते रहते हैं।

वेंटिलेशन पर पड़ी उच्च शिक्षा को अगर बचाना है तो संघ लोक सेवा आयोग की तर्ज पर तत्काल राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त योग्यतम और प्रतिष्ठित लोगों के नेतृत्व में भारतीय उच्च शिक्षा सेवा आयोग बनाकर नियुक्ति-प्रक्रिया उसके हवाले की जानी चाहिए। या फिर यह जिम्मेदारी संघ लोक सेवा आयोग को भी दी जा सकती है। केंद्र सरकार से अनुदान प्राप्त सभी संस्थानों को इसके दायरे में लाया जाना चाहिए। इन सभी संस्थानों से रिक्तियों का विवरण मांगकर साल में एकबार विज्ञापन आना चाहिए और साल में एकबार लिखित परीक्षा और साक्षात्कार किया जाना चाहिए। नियुक्ति में 50 प्रतिशत अधिभार लिखित परीक्षा, 30 प्रतिशत अधिभार समस्त अकादमिक उपलब्धियों, और 20 प्रतिशत अधिभार साक्षात्कार को दिया जाना चाहिए। पूरी नियुक्ति-प्रक्रिया को कोडेड बनाकर गोपनीयता सुनिश्चित की जानी चाहिए। सफल अभ्यर्थियों को मेरिट सूची में उनके स्थान, कॉलेजों/विश्वविद्यालयों को उनके द्वारा दी गयी वरीयता और उनके स्थायी निवास-स्थान आदि के समेकित अधिभार के आधार पर नियुक्ति दी जानी चाहिए। सत्र के बीच में कोई रिक्ति आने पर प्रतीक्षा सूची में से नियुक्ति की जानी चाहिए ताकि एडहॉक, अनुबंध और गेस्ट नियुक्तियों वाली अमानवीय व्यवस्था बंद हो सके। इससे न सिर्फ गुणवत्ता सुनिश्चित होगी, बल्कि धन और समय की भी बचत होगी। अभ्यर्थी नौकरी के विज्ञापनों की दैनंदिन खोज, असंख्य फॉर्म भरने की जद्दोजहद और नियमित 'साक्षात्कार' देने की जलालत से बच सकेंगे।

ड्राफ्ट रेगुलेशन में प्राचार्य पद को भी स्नातक कॉलेज और स्नातकोत्तर कॉलेज के आधार पर बांटकर प्राचार्य की अर्हता और वेतन को अलग-अलग कर दिया गया है। स्नातक कॉलेजों के प्राचार्य को पे मैट्रिक्स में लेवल 13 ए में रखा गया है। शिक्षण अनुभव भी मात्र 10 वर्ष कर दिया गया है। जिस कॉलेज में दर्जनों लोग लेवल 14 में होंगे वहां संस्थान प्रमुख को उनसे नीचे के वेतनमान में रखना अनुचित है। यह पद की गरिमा और प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है।

साथ ही, स्नातकोत्तर कॉलेजों में भी कक्षाएं तो स्नातक की ही होती हैं, स्नातकोत्तर छात्रों का तो वहां नामांकन ही होता है। उनकी कक्षाएं प्रायः विश्वविद्यालयों में ही होती हैं। इसलिए यह वर्गीकरण बेतुका है।

आजकल प्रत्येक कॉलेज में लेवल 14 वाले अनेक प्रोफेसर होते हैं। इसलिए संस्थान प्रमुख/प्राचार्य के कार्यभार और जिम्मेदारियों को देखते हुए उसे उनसे एक दर्जा ऊपर लेवल 15 में रखा जाना चाहिए। प्राचार्य के कार्यकाल को मात्र 5 वर्ष के लिए सीमित कर दिया गया है। 5 वर्ष का दूसरा कार्यकाल पाने के लिए फ्रेश प्रक्रिया अपनाने की प्रस्तावना है। यह निर्णय संस्थान में नीतिगत निरन्तरता और स्थिरता की समाप्ति करते हुए अस्थायी नीतियों और तात्कालिकता को प्रोत्साहित करेगा। दूरदर्शी, दूरगामी और सुचिंतित नीतियों, विकास योजनाओं और सांस्थानिक लक्ष्यों को बाधित करेगा। स्थायी शिक्षक और शिक्षणेतर कर्मियों वाले संस्थानों में अस्थायी / अल्पावधि नेतृत्व होने से अराजकता और अनुशासनहीनता बढ़ेगी और 'कामचलाऊ' वातावरण बनेगा। पठन-पाठन नकारात्मक रूप से प्रभावित होगा। संस्थान के चतुर्दिक विकास के

लिए नेतृत्व की क्षमता, योग्यता, स्थिरता और कार्यकाल सम्बन्धी सुरक्षा आवश्यक है। मजबूर नहीं, मजबूत प्रशासक ही संस्थान का कायाकल्प कर सकता है। मोदी जी ने दिखाया है कि सशक्त और स्थिर नेतृत्व ही बड़े और कड़े निर्णय ले सकता है। इसलिए प्राचार्य का पहला कार्यकाल 10 वर्ष करते हुए प्रत्येक 5 वर्ष पर उसके कार्य/प्रदर्शन की समीक्षा का प्रावधान किया जाना चाहिए। प्राचार्य पद हेतु न्यूनतम शिक्षण अनुभव 20 वर्ष, प्रशासनिक अनुभव 5 वर्ष और न्यूनतम आयु 50 वर्ष की जानी चाहिए। यूजीसी से अनुदान प्राप्त सभी कॉलेजों के प्राचार्यों और सभी केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की नियुक्ति-प्रक्रिया को भी केंद्रीकृत करने की आवश्यकता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक न्याय के प्रावधानों का भी अनुपालन किया जाना चाहिए। केंद्रीकृत नियुक्ति प्रक्रिया से न सिर्फ समस्त अभ्यर्थियों के समय और धन की बचत होगी, बल्कि लगातार चलने वाली चयन समितियों पर होने वाले खर्च, समय आदि संसाधनों की भी बचत सुनिश्चित होगी।

ड्राफ्ट रेगुलेशन में कुलपति के रूप में शिक्षाविदों के अलावा उद्यमियों, प्रशासन/पुलिस/सेना के अधिकारियों, कम्पनियों के प्रबंधकों आदि को चुनने की भी प्रस्तावना की गयी है। यह निर्णय प्रतिगामी होगा। इसकी जगह अकादमिक प्रशासन में उपलब्धियां हासिल करने वाले अनुभवी संस्थान-निर्माताओं को कुलपति के रूप में चुना जाना चाहिए। संस्थान को बनाने/विकसित करने वाले दृष्टिसंपन्न कुलपतियों के लिए भी कार्य-समीक्षा के आधार पर दूसरे कार्यकाल का प्रावधान किया जाना चाहिए।

कुलपतियों की नियुक्ति को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करने के लिए राष्ट्रपति, शिक्षा मंत्री, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग/भारतीय उच्च सेवा आयोग के अध्यक्ष और विश्वविद्यालय की सर्वोच्च शासी परिषद् के प्रतिनिधि की पांच सदस्यीय समिति होनी चाहिए। इसी तरह की समिति राज्यस्तर पर भी बनाई जानी चाहिए।

उच्च शिक्षा क्षेत्र में तीन आयाम (वर्टिकल) बनाये जाने चाहिए- अध्यापन/शिक्षण, शोध/अनुसन्धान और अकादमिक प्रशासन 'शिक्षकों को कैरियर प्रारम्भ करते ही प्रतिभा, योग्यता और अभिरुचि के आधार पर क्रमशः इन तीन में से एक में प्रशिक्षित और विकसित किया जाना चाहिए। हमारे देश में अकादमिक प्रशासन को अत्यधिक हल्के में लिया जाता है और किसी भी आचार्य को प्राचार्य या कुलपति बनाने की रवायत है। जबकि अकादमिक प्रशासन अत्यंत चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है। यह विशेषज्ञता, अनुभव और प्रशिक्षण की मांग करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के घोषित लक्ष्य के अनुरूप अगर भारत में अंतरराष्ट्रीय ख्याति के शिक्षण संस्थान बनाने/विकसित करने हैं, विश्वगुरू और विकसित भारत के स्वप्न को साकार करना है, और हमें उच्च शिक्षा क्षेत्र में लम्बी लकीर खींचनी है तो दूरगामी और दूरदर्शी नीति-निर्माण करना होगा। गोल-गोल घूमने से तो जीरो ही बनता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को रेगुलेशन-2018 की विसंगतियों को दूर करने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और नवगठित आठवें वेतन आयोग के आलोक में अनुभवी संस्थान निर्माता शिक्षाविदों की समिति गठित करके उपरोक्त सुझावों के मद्देनजर व्यापक विचार-विमर्श करते हुए उच्च शिक्षा क्षेत्र में सुधार की दिशा में काम करना चाहिए। हड़बड़ी में गड़बड़ी होने की आशंका है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 युगांतरकारी पहल है। इसके क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों को समझते हुए आवश्यक संसाधन मुहैय्या कराने, आधारभूत ढांचा विकसित करने, छात्र-शिक्षक अनुपात बढ़ाने और भारतीय भाषाओं में स्तरीय पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराने का काम भी प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के रामानुजन कॉलेज में प्राचार्य हैं।)

“नेपाल में गांधी विचार के वाहक: तुलसी मेहर बाबा”

तुलसी मेहर ने काठमांडू के नजदीक ‘गोठातर’ नमक स्थान पर गांधी आदर्श उच्च विद्यालय की स्थापना भी की। उन्होंने ‘नेचर मेडिसिन सेंटर’ की स्थापना की जिससे आस-पास के लोगों को आरोग्य लाभ प्राप्त हो सके। जब कभी कुछ काम होता या अवसर प्राप्त होता तब तुलसी मेहर भारत के गांधीवादी संस्थानों का भ्रमण अवश्य करते रहे। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में अर्थात 1973 में, इन्होंने अपने द्वारा स्थापित सभी संस्थाओं को एक सूत्र में बांधा और उसका नाम ‘नेपाल चरखा प्रचारक गांधी स्मारक महागुथी’ कर दिया गया।

डॉ. प्रिंस कुमार सिंह

तुलसी मेहर बाबा का जन्म ‘नेपाल’ के काठमाण्डू के नजदीक ‘ललितपुर’ जिले में 30 दिसंबर 1896 ई. को एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम ‘कैलाश मिहिर श्रेष्ठ’ एवं माता का नाम ‘योगमाया’ था। वह अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे। उन्होंने ‘स्वामी दयानंद सरस्वती’ की पुस्तक ‘द लाइट ऑफ ट्रूथ’ पढ़ी और समाज के लिए कुछ करने हेतु प्रेरित हुये। शुरुआती दिनों में जब नेपाल में निरंकुश राणा का शासन था, जब लोगों के लिए न तो समुचित शिक्षा की व्यवस्था थी और न ही स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता, उस दौरान तुलसी मेहर ने आत्म जागरूकता के महत्व के बारे में समाज को प्रेरित करने का कार्य किया। अज्ञानता और समाज की अन्य बुराइयों के खिलाफ वह जनता के सामने आने लगे और विशेष रूप से कठोर जाति व्यवस्था एवं महिलाओं के उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाई। सामाजिक सुधार और विकास के प्रति उनकी दृष्टि महिला सशक्तिकरण पर जोर देने की थी, जिसके लिए वे महिलाओं की शिक्षा की आवश्यकता और महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए रोजगार सृजन कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। दरअसल ऐसे तानाशाही वाले दौर में यह बहुत कठिन कार्य था, जबकि समाज में ‘पर्दा-प्रथा’ घर किए हुए थी। तुलसी मेहर के इन्हीं सब कार्यों के कारण नेपाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री ‘चंद्र शमशेर जंगबहादुर राणा’ ने उन्हें देशद्रोही करार दिया और आजीवन कारावास या आजीवन निर्वासन की सजा में से कोई एक चुनने को कहा। तुलसी मेहर ने आजीवन निर्वासन स्वीकार करने का फैसला किया, क्योंकि उन्हें लगता था कि जेल की चारदीवारी के अंदर सड़ने से वे देश के लिए कुछ नहीं कर पाएंगे। अत: “श्रेष्ठ ने निर्वासन की मांग की और उन्हें 1920 में अहमदाबाद में साबरमती आश्रम जाने की अनुमति दी गई।” ‘श्री तिन चंद्र समसेर’

जब नेपाल में निरंकुश राणा का शासन था, जब लोगों के लिए न तो समुचित शिक्षा की व्यवस्था थी और न ही स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता, उस दौरान तुलसी मेहर ने आत्म जागरूकता के महत्व के बारे में समाज को प्रेरित करने का कार्य किया। अज्ञानता और समाज की अन्य बुराइयों के खिलाफ वह जनता के सामने आने लगे और विशेष रूप से कठोर जाति...।

द्वारा प्रदान किए गए थोड़े से धन के साथ, तुलसी मेहर श्रेष्ठ भारत के लिए निकल पड़े।

चूंकि सत्य की उनकी खोज और समाज के लिए काम करने की उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति एवं समर्पण ने उन्हें भारत में महात्मा गांधी के निकट संपर्क में ला दिया था, इसलिए वे साबरमती आश्रम में रहे और कताई और बुनाई की तकनीक सीखने लगे। महात्मा गांधी के सानिध्य ने उन्हें पीड़ित लोगों की मुक्ति के लिए कार्यानुभव और अंतर्दृष्टि प्राप्त करने का अवसर दिया। अतः अपने देश में बुराई से लड़ने के लिए उनमें प्रतिबद्धता और आत्मविश्वास अधिक दृढ़ हो गया। उनकी मेहनत और लगन ने गांधीजी को अत्यधिक प्रभावित किया।

सन् 1925 में 29 दिसंबर के दिन गांधीजी ने तुलसी मेहर को एक प्रमाण-पत्र प्रदान किया जिसमें लिखा था कि "तुलसी मेहर जी सत्याग्रह आश्रम में कम से कम चार वर्ष तक रहे हैं। उनके संयम ने मेरे दिल पर बड़ा प्रभाव डाला है। वे बड़ी सादगी से आश्रम में रहते थे। उनका उद्यम भी स्तुत्य था। उन्होने धुनना-कातना बिनना सीख लिया है। और धुनने में उनका पहला स्थान रहा है। आज भी मैं उनको आश्रमवासी समझता हूं। (मोहनदास- गांधी)" साथ ही गांधीजी ने नेपाली प्रधानमंत्री को एक...।

बलवंतसिंह जी अपनी पुस्तक 'बापू का आश्रम परिवार' में तुलसी मेहर के विषय में लिखते हैं कि "श्री तुलसी मेहरजी नेपाल के हैं और साबरमती आश्रम में 1927 के पहले ही आ गये थे। उनके आने का ठीक साल मुझे मालूम नहीं है, लेकिन वे पू. मगनलाल भाई गांधी के जमाने के आश्रमवासी हैं और खादी का काम सीखने आए थे। वे कताई-धुनाई के अच्छे निष्णात माने जाते थे और बापूजी तथा बा के निजी सेवक भी थे। मेरा परिचय तो उनसे मगनवाड़ी (वर्धा) में और बाद में सेवाग्राम में ही हुआ। मैं उन्हें नेपाल के राजा के नाम से ही पुकारता हूं।"

दरअसल साबरमती आश्रम में रहने के दौरान तुलसी मेहर बाबा ने विभिन्न रचनात्मक कार्यों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन् 1925 में 29 दिसंबर के दिन गांधीजी ने तुलसी मेहर को एक प्रमाण-पत्र प्रदान किया जिसमें लिखा था कि "तुलसी मेहर जी सत्याग्रह आश्रम में कम से कम चार वर्ष तक रहे हैं। उनके संयम ने मेरे दिल पर बड़ा प्रभाव डाला है। वे बड़ी सादगी से आश्रम में रहते थे। उनका उद्यम भी स्तुत्य था। उन्होंने धुनना-कातना बिनना सीख लिया है। और धुनने में उनका पहला स्थान रहा है। आज भी मैं उनको आश्रमवासी समझता हूं। साथ ही गांधीजी ने नेपाली प्रधानमंत्री को एक सिफारिश पत्र लिखा था कि तुलसी मेहर को नेपाल वापस आने दिया जाए और उन्हें नेपाली लोगों की भलाई के लिए काम करने दें। अतः सन् 1925 में वे गांधीजी के द्वारा प्रदान की गई खड़ाऊँ, सूत के दो बंडल और खादी का एक कपड़ा जो उन्होंने पहन रखा था लेकर अपने देश की सेवा के लिए लौट आए। नेपाल में, उन्होंने पारंपरिक चरखे को लोकप्रिय बनाने के लिए काम किया और दलितों और निराश्रित विधवाओं के कल्याण के लिए कार्य किया। "उन्होंने 1927 में 'श्री तिन चंद्र कामधेनु चरखा प्रचारक महागुथी' नामक एक संस्था की स्थापना की जो उस समय के पहले सामाजिक सेवा संगठनों में से एक थी।"

इस संस्था में हस्त कौशल के विकास एवं खादी वस्त्र निर्माण का कार्य किया जाता था। तुलसी मेहर ने नेपाल की महिलाओं को चरखा चलाने एवं भारत में स्थित विभिन्न गांधीवादी संस्थान, जिनमें कातने और बुनने का प्रशिक्षण दिया जाता था उसमें भर्ती होने और अपने हस्तकौशल का विकास करने हेतु प्रोत्साहित किया।

तुलसी मेहर बाबा ने नेपाल के प्रशासनिक कार्यालयों में भी लोगों को खादी वस्त्र धारण करने की प्रेरणा दी और महिला शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया। जिससे वहां के मंत्री और अन्य उच्च अधिकारी भड़क गए तथा तुलसी मेहर के इस कार्य को 'देशद्रोह' करार देकर जेल में बंद कर दिया। साथ ही उनकी संस्था 'महागुथी'को भी बंद कर दिया गया। हालांकि कुछ समय

पश्चात तुलसी मेहर बाबा को जेल से रिहा कर दिया गया, जिसके उपरांत वह पुनः भारत लौट आए। सन् 1923 से जमनालाल बजाज द्वारा स्थापित 'गांधी सेवा संघ' वर्धा में महात्मा गांधी के विचारों और कार्यों को आगे बढ़ाने हेतु कार्य कर रही थी।

अतः जब तुलसी मेहर पुनः भारत आये तब उन्होंने 3 जून 1934 ई. को इस संस्था में अपना पंजीकरण कराया और इसके कार्यकर्ता बन गए। 'गांधी सेवा संघ' का सदस्य बनने के पश्चात वह पुनः नेपाल चले गए और रचनात्मक कार्यों को वहां पुनः बहाल करने का प्रयास किया। इसी क्रम में अपने कार्य और प्रयासों का विवरण वह 'गांधी सेवा संघ' के तत्कालीन मंत्री को पत्र द्वारा भेजा करते थे। 1936 में तुलसी मेहर पुनः वर्धा आये, कुछ वक्त तक मगनवाड़ी में रहे, तदोपरांत सेवाग्राम आश्रम उनका निवास बन गया। आश्रम में अन्य सभी के साथ-साथ मीरा बहन (मेडलीन स्लेड) को भी इन्होंने ही कातना-बुनना सिखाया। सेवाग्राम आश्रम में भी गांधीजी की खानगी या निजी सेवा का लाभ इन्हें प्राप्त हुआ, रात्रि में ये गांधीजी के पास ही सो जाते थे।

सन् 1969 के सितंबर माह में जब 'हरिजन आश्रम' द्वारा आयोजित आश्रमवासियों के स्नेह-मिलन में तुलसी मेहर श्रेष्ठ आए थे तब बलवंतसिंह जी को अपने सेवाग्राम आश्रम का पुराना अनुभव बताते हुये कहा कि "मैं बापूजी के पास हृदय-कुंज में सोया करता था। जब बापूजी पेशाब के लिए या और किसी काम के लिए उठते, तो थोड़े से खटक से ही मेरी आँख खुल जाती थी। एक रोज बापूजी रात को उठे और चलने लगे। मैं भी पीछे-पीछे चलने लगा। मैंने समझा कि बापूजी बुद्ध की तरह आश्रम छोड़कर तो नहीं जा रहे हैं। लेकिन सड़क पर किसी को बिच्छू ने डंक मारा था। उसके रोने की आवाज बापूजी के कान पर पड़ी थी। उसी के पास वे जा रहे थे। जाकर देखा तो एक भाई बिच्छू के डंक के दर्द के मारे रो रहा था। बापूजी ने उसके उपचार की व्यवस्था कर दी तब वापिस आये। बापूजी मुझसे कहते : 'तुलसी मेहर, तुम सारी रात सोते नहीं हो। जब देखता हूं तब तुम खड़े ही दिखते हो?' मैंने कहा: 'नहीं बापूजी, मैं खूब सोता हूं। तब ही जागता हूं जब आप जागते हैं, नहीं तो मैं तो सोता ही रहता हूं।' बापूजी कहते मेरे लिए भी बार-बार उठने की क्या जरूरत है? मैं कहता बापूजी मेरी आदत ही पड़ गई है तो क्या करूँ? नींद तो मेरी पूरी हो ही जाती है।"

तुलसी मेहर सन् 1938 तक सेवाग्राम आश्रम में रहे, तत्पश्चात वह नेपाल वापस चले गए। अपनी संस्था का कार्य उन्होंने पुनः आरंभ किया। सन् 1939 में 15 अगस्त को एवं 14 अक्तूबर को तुलसी मेहर ने 'गांधी सेवा संघ' के मंत्री को पत्र लिखा और अपने कार्य की प्रगति और उससे जुड़े अपने नवीन प्रयासों के विषय में अवगत कराया। अपने प्रयासों के कारण ही तुलसी मेहर को 1945 में पुनः जेल जाना पड़ा और वह लगभग पांच वर्ष कारावास में रहे। सन् 1951 में जब नेपाल में 'राणा' के शासन का अंत हो गया, तब तुलसी मेहर श्रेष्ठ ने तत्कालीन प्रधानमंत्री 'मोहन शमशेर जंगबहादुर राणा' और 'विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला' की उपस्थिति में 'नेपाल गांधी स्मृति निधि' की स्थापना की थी।

'गांधी सेवा संघ' का सदस्य बनने के पश्चात वह पुनः नेपाल चले गए और रचनात्मक कार्यों को वहां पुनः बहाल करने का प्रयास किया। इसी क्रम में अपने कार्य और प्रयासों का विवरण वह 'गांधी सेवा संघ' के तत्कालीन मंत्री को पत्र द्वारा भेजा करते थे। 1936 में तुलसी मेहर पुनः वर्धा आये, कुछ वक्त तक मगनवाड़ी में रहे, तदोपरांत सेवाग्राम आश्रम उनका निवास बन गया।

तुलसी मेहर ने काठमांडू के नजदीक 'गोठातर' नमक स्थान पर गांधी आदर्श उच्च विद्यालय की स्थापना भी की। उन्होंने 'नेचर मेडिसिन सेंटर' की स्थापना की जिससे आस-पास के लोगों को आरोग्य लाभ प्राप्त हो सके। जब कभी कुछ काम होता या अवसर प्राप्त होता तब तुलसी मेहर भारत के गांधीवादी संस्थानों का भ्रमण अवश्य करते रहे। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में अर्थात

1973 में, इन्होंने अपने द्वारा स्थापित सभी संस्थाओं को एक सूत्र में बांधा और उसका नाम 'नेपाल चरखा प्रचारक गांधी स्मारक महागुथी' कर दिया गया। सन् "1977 में भारत सरकार द्वारा उन्हें 'जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था।" तुलसी मेहर ने समाज की विधवा एवं निराश्रित महिलाओं के सुधार एवं उत्थान हेतु पुरस्कार की राशि में से, आवासीय प्रकार के प्रशिक्षण एवं पुनर्वास केन्द्र की स्थापना हेतु 145,000 रुपये की राशि दान कर दी। यह केंद्र निराश्रित महिलाओं को बुनाई, सिलाई एवं हस्तकला आदि का प्रशिक्षण देता है और उनके बच्चों की शिक्षा का प्रबंध भी करता है।

27 सितंबर 1978 को 82 वर्ष की अवस्था में, तुलसी मेहर बाबा (श्रेष्ठ) का निधन हो गया। उनके देहावसान के पश्चात नेपाल सरकार ने उनके द्वारा स्थापित संस्था का नाम 'नेपाल चरखा प्रचारक गांधी-तुलसी स्मारक महागुथी' कर दिया। बलवंतसिंह जी अपनी पुस्तक 'बापू का आश्रम-परिवार' में तुलसी मेहर के विषय में लिखते हैं कि "तुलसी मेहर बड़े ही कर्मठ, सरल और मिलनसार व्यक्ति हैं। उन्होंने आश्रम की तरफ से नेपाल में जो काम किया है उसका इतिहास सोने के अक्षरों में लिखने लायक है। नेपाल में चरखा, खादी व ग्रामोद्योगों को पनपाने और उनका प्रचार करने में तुलसी मेहरजी ने अपना जीवन न्योछावर कर दिया है।" वर्तमान समय में भी आश्रम के उत्पादों को बेचने के लिए सबसे पहले 'पाटन दरबार' प्रांगण में शिल्पकला की एक छोटी सी दुकान स्थापित की गई। बाद में 1984 में, 'ऑक्सफैम' नामक संस्था जो बच्चों की शिक्षा हेतु कार्य करती है, के समर्थन से यह 'महागुथी: क्राफ्ट विद ए कॉन्शियस' नामक एक संगठन बन गया। दरअसल 'गुथी' एक पारंपरिक सामाजिक संगठन है जिसका उपयोग नेपाल के नेवारी समाज में सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए किया जाता है, और महा का अर्थ है बड़ा; इस प्रकार, महागुथी का अर्थ 'एक बड़ा नेवारी सामाजिक संगठन' है।

महागुथी संगठन घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों बाजारों में सेवा प्रदान करता है। नेपाली हस्तशिल्प का उत्पादन, विपणन और निर्यात करता है। काठमांडू घाटी में इसकी तीन दुकानें हैं और संगठन की आय का 40 प्रतिशत 'तुलसी मेहर महिला आश्रम' की महिलाओं और बच्चों को प्रशिक्षण, भोजन, आश्रय, कपड़े, स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा प्रदान करने में खर्च किया जाता है। आश्रम के उत्पादों के लिए एक आउटलेट होने के अलावा, लगभग पांच विकासात्मक क्षेत्रों में एक हजार से अधिक हस्तशिल्प उत्पादकों को बाजार, प्रशिक्षण और सहायता प्रदान करते हैं, जिनमें 90% से अधिक कार्यबल महिलाओं का है। 'महागुथी फेयर ट्रेड ग्रुप' नेपाल के संस्थापक सदस्य हैं, जो बदले में 'एशिया फेयर ट्रेड फोरम' और 'इंटरनेशनल फेयर ट्रेड एसोसिएशन' का सदस्य है।

'फेयर ट्रेड ग्रुप नेपाल' के अनुसार, महागुथी "जागरूकता के साथ महागुथी शिल्प समानता पर आधारित आर्थिक और सामाजिक रूप से समृद्ध समाज की कल्पना करता है। फेयर ट्रेड मूल्यों और सिद्धांतों का पालन करने के मिशन के साथ, यह वंचित समूहों, विशेष रूप से महिलाओं को सामान, कौशल प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और सामाजिक सेवाएं प्रदान करता है। यह महिलाओं के पुनर्वास कार्यक्रमों और विभिन्न विकास परियोजनाओं में भी योगदान देता है। महागुथी हथकरघा वस्त्र, चीनी मिट्टी की चीजें और मिट्टी के शिल्प, हस्तनिर्मित कागज और संगीत वाद्ययंत्र जैसे गायन कटोरे में माहिर हैं। गैर-लाभकारी फेयर ट्रेड संगठन के रूप में, महागुथी कारीगरों और निर्माता समूहों को विभिन्न शिल्प बनाने, उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करने, नए उत्पादों को विकसित करने और अपने स्वयं के सूक्ष्म व्यवसायों को बनाए रखने में मदद करता है।"

संपर्क:
शोधार्थी (गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
princesingh-mgahv@gmail-com

कविता

नरेन्द्र शुक्ल की कविताएं

हमराही

एक रोज जब करीब आ जायेगा व्यक्ति-
एकदम तुम्हारे अन्त:वृत्त में
बिल्कुल उसी रोज
लाजिम है कि,
वह दूर होने लगेगा !!

धरती गोल है।
धरती अपनी धुरी पर घूमती है।
मजे की बात है कि
वह अपनी धुरी पर घूमते हुए भी
घुमती है- दीर्घवृत्ताकार !

एक साथ
जब वह किसी के पास जा रही होती है,
ठीक उसी समय
वह किसी और से
दूर भी जा रही होती है।

इसलिए मेरे दोस्त !
दूर और पास
सब धोखा है।
अभी इसी समय
बिल्कुल इसी समय
जो तुम्हारे पास है उसे समेट लो
अपने अन्त: वृत्त में !!
बस
इतना ही कर सकते हो तुम !
हालाँकि जो छूट गया
वो फिर आएगा एक दिन
उस दिन

ठीक उस दिन लगा सको तो
गले लगा लेना उसे।।

मेरे राही
उन तमाम
अंतः वृत्तों, दीर्घवृत्तों–
परिवृत्तों के बावजूद
हम फिर मिलेंगे।
याद रखना
दुनिया गोल है!!

और वह चुप हो गया...

लोग चाहते हैं कि
वह उन्हें समझे,
वह उन्हें समझता गया
और, चुप होता गया।

बहुत से लोग चाहते थे कि,
वह उनकी उदासी दूर करे
उसने सबकी उदासी दूर की
और फिर वह
खुद उदास हो गया।

लोग चाहते थे कि.
वह उनके लिए कुछ करे
वह करता गया करता ही गया,
यंत्रवत !
वह यंत्र हो गया
चुपचाप !
वह चुप हो गया।

मुरझा जाने दो...

मुरझा जाने दो
इन फूलों को
ये तोड़ लिए गए हैं
अपनी शाखों से
न ये चाहते थे कि
ये शाखों से टूटें,
न शाखें चाहती थीं
इनको खुद से अलग करना।
पर टूट तो गए हैं-
इसलिए मुरझा जाने दो।
रे सौदागर !
उसी दिन जान लिया था मैंने
कि अब, मुरझा जाना ही मेरी नियति है
जिस दिन,
तुमने मार डाला था मेरा वनमाली!

मैं भूल गया हूँ प्यार सखी !

कैसे होता है प्यार सखी.
मैं भूल गया हूँ प्यार सखी।।
दिन के उस छत्तिस घंटे में
जब जब टूटा हूँ यार सखी
सिगरेट के पहले कश से
अंतिम तक,
तुम ही तो रहती हो याद सखी।
मैं भूल गया हूँ यार सखी
कैसे होता है प्यार सखी।।
कैसे समझें और क्या समझाऊँ
न तुम इतनी नादान सखी
न मैं इतना अनजान सखी
मैं भूल गया हूँ यार सखी,
कैसे होता है, प्यार सखी।।
अपने बच्चों की यह दुनिया
तुम ही बतला दो किसकी है?
तुमने जागी रातें तो,
सिरहाने मैं भी तो था?
तब तुम थीं,
मैं था, प्यार कहाँ था?
तुम बतला दो यार सखी।
मैं भूल गया हूँ प्यार सखी।।
जब जब तुमने कुछ भी खोया
मैंने पाया।
जब जब मैंने कुछ भी खोया तुमने पाया।
समय बहुत तेजी से बीता
यूँ खड़े खड़े भीतर जो रीता
तुम बतला दो कहाँ मिलेगा
अपना खोया प्यार सखी
मैं भूल गया हूँ यार सखी
कैसे होता है प्यार सखी।।

संपर्कः
बी.एच. 702 अभिमन्यु अपार्टमेंट वसुन्धरा इन्कलेव दिल्ली-110096
ईमेलः narendrashuklahistorian@gmail.com
मो.: 9560737977

फोटो में गांधी

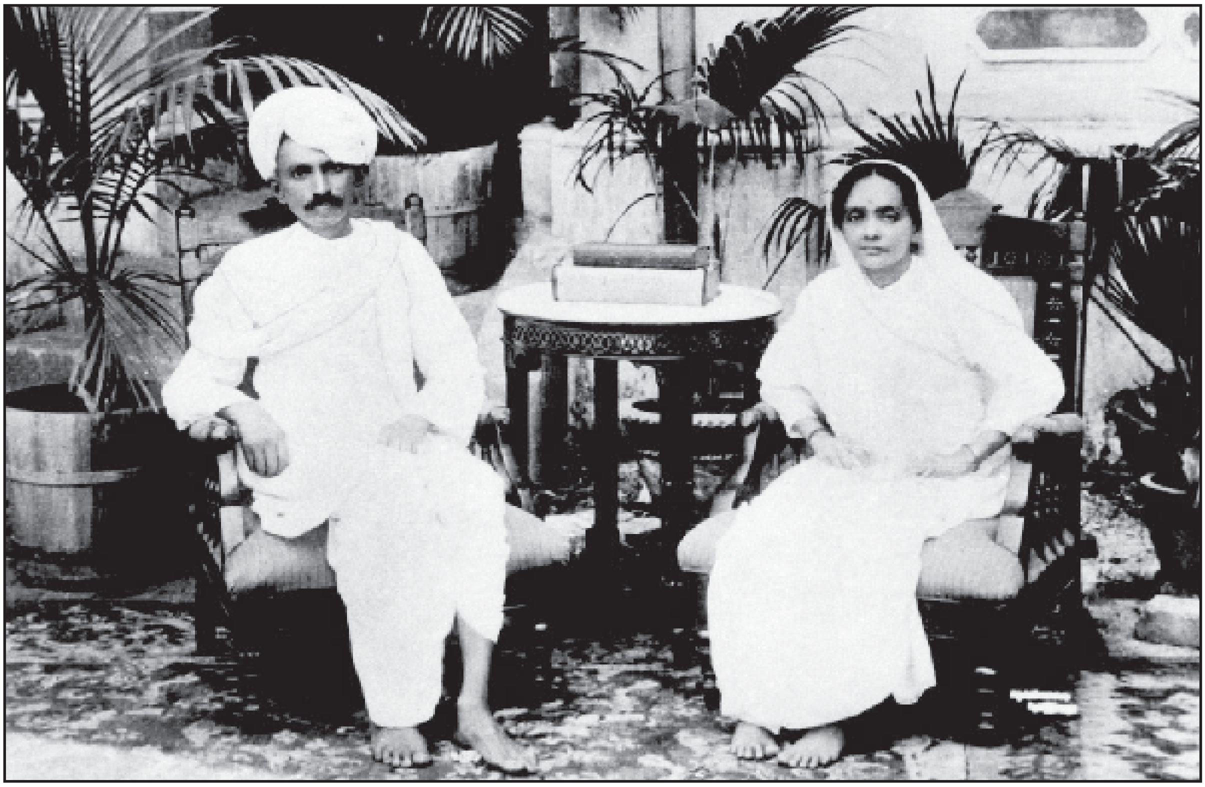

अंतरिक्ष का फोन II

क्षमा शर्मा

–मगर सपने में क्यों आएगी। गिलहरी, खरगोश तो जागते हुए आए थे।

–परियों को बच्चों के सपने में आना उनके साथ खेलना बहुत अच्छा लगता है। तुम उसके साथ छुपम छुपाई खेलना।

–नहीं मैं चैस खेलूंगा।

अगर उसको चैस न आती हो, जैसे मुझे नहीं आती तो क्या करोगे। दादी ने कहा।

–सिखा दूंगा न। आप तो सीखती ही नहीं हैं।

दादा जी हंसकर बोले–और सुनाओ परी की कहानी। जवाब तो देना पड़ेगा। जब तक उसे सही जवाब नहीं मिलेगा, पूछता ही रहेगा।

तभी वहां एक बड़ी सी गिलहरी फुदकती हुई आई और अंतरिक्ष जिस कुर्सी पर बैठा था, उसके पीछे चढ़ गई। अंतरिक्ष दूर हटकर उसे देखने लगा। फिर दौड़ा गया और अंदर से ब्रेड ले आया। ब्रेड को गिलहरी पंजों में पकड़कर खाने लगी। दादा जी दूर से यह देख रहे थे। बोले–अंतरिक्ष आज से यह तो तुम्हारी दोस्त बन गई।

–अच्छा, क्या मेरे साथ स्कूल भी जाया करेगी।

–अरे नहीं, ये तुम्हारी स्कूल वाली नहीं, घर वाली दोस्त है।

–घर वाली दोस्त, मतलब।

मतलब कि ये तुम्हारे साथ घर में खेला करेगी। आखिर घर में खेलने के लिए भी तो तुम्हें दोस्त की जरूरत है। –दादा जी बोले।

मगर ये क्या खेलेगी, फुटबाल, बैडमिंटन, चैस या कैरम। लेकिन मेरी तरह स्कूल क्यों नही जाएगी। फिर यह किताब पढ़ना कैसे सीखेगी। अंतरिक्ष ने सोचते हुए कहा।

–अरे भाई ये तो गिलहरी के स्कूल में पढ़ेगी। और इसके मम्मी, पापा, दादा, दादी वैसे ही पढ़ाया करेंगे जैसे हम तुम्हें पढ़ाते हैं।

–कहां है गिलहरियों का स्कूल। दिखाओ।

–अरे होगा किसी पेड़ पर। एक दिन मैं और तुम ढूढ़ने चलेंगे जंगल में।

अभी चलिए। मुझे देखना है कि गिलहरी लैपटाप पर कैसे काम करती हैं। कैसे मैथ्स पढ़ती हैं। अंतरिक्ष जिद करने लगा।

अब दादा जी परेशान। तभी बोले–तुम्हारी आज छुट्टी है न। तो भला उनका स्कूल क्यों खुला होगा। उनकी भी छुट्टी होगी।

–मेरी तो दिवाली की छुट्टी है। क्या गिलहरियां भी दिवाली मनाती होंगी। फुलझड़ी चलाती होंगी। रात में लाइट्स लगाती होंगी।

और तुम्हारी तरह खेलती भी होंगी।–कहकर दादा जी हंसे।

अच्छा तो कल अगर गिलहरी आई तो मैं उससे पूछूंगा कि दिवाली कैसे मनाई। फिर उसके साथ क्या खेलूं बैडमिंटन।

अगले दिन जब गिलहरी आई तो अंतरिक्ष दौड़कर अपने रैकेटस उठा लाया। उसने एक रैकेट गिलहरी की तरफ फेंका तो भागते हुए वह गुम हो गई।

–अरे, वह तो भाग गई । मेरे साथ खेलना क्यों नहीं चाहती। क्या नाराज हो गई।

नहीं, नाराज क्यों होगी। वह तो तुम्हारी दोस्त है। हो सकता है, उसकी मम्मी उसे बुला रही हों। शायद मम्मी से यह कहकर लौट आए कि उसे तुम्हारे साथ खेलना है।

–कल आएगी तो मैं उसके साथ कुछ और खेलूंगा। वो तो छोटी सी है और बैडमिंटन रैकेट बड़ा। क्या खेलूं।

अब भई, यह तो तुम पर है कि तुम उसे क्या खेलना सिखाते हो। हो सकता है यह ही तुम्हें वैसे ही उछलना, कूदना, पेड़ पर चढ़ना सिखा दे जैसे कि खुद करती है।

दादा जी की बात सुनकर अंतरिक्ष को बहुत आनंद आया–अरे हां मैं तो फिर आराम से ऊंचे–ऊंचे पेड़ों पर चढ़ जाया करूंगा, जैसे यह चढ़ जाती है।

अंतरिक्ष और दादा जी बात ही करते रह गए। गिलहरी दोबारा आकर खा–पीकर वापस चली गई थी। अब दूर तक उसका पता नहीं था।

तभी दादी ने कहा–अंतरिक्ष कहां हो।

–मैं यहां हूं। गुलाब के पास।

–क्या कर रहे हो। चलो जल्दी से नहा लो। फिर नाश्ता भी करना है।

–ओफ, ओह दादी पहले मैं इस गुलाब को तो नहला दूं।

–गुलाब तो नहा लेगा न, जब हम पौधों में पानी देंगे।

–नहीं तब वह साबुन से कैसे नहाएगा। आप कहती हो न साबुन से गंदगी दूर हो जाती है। मैं भी इसकी गंदगी दूर कर रहा हूं।

ओफ ओह, अंतरिक्ष सब गुलाब टूट जाएंगे। कहते हुए दादी ने बाहर जाकर देखा तो अंतरिक्ष एक गिलास में पानी लेकर गुलाब की पत्तियों पर साबुन लगा रहा था। दादी ने उसके हाथ से साबुन छीना और उसे हाथ पकड़कर अंदर ले आई। दादी अंदर तो ले आई मगर अंतरिक्ष नाराज हो गया। बोला–आपने मुझे गुलाब को नहीं नहलाने दिया। अब मैं भी नहीं नहाऊंगा। –जिद नहीं करते बेटा। तुम्हारा ही तो गुलाब है। गुलाब की पंखुड़ियों पर साबुन लगाओगे, तो वे टूट जाएंगी। खराब हो जाएंगी। तब क्या तुम्हें अच्छा लगेगा। बताओ।

तभी दादा जी ने टी वी आन करते हुए कहा–अंतरिक्ष जल्दी से नहा लो। तुम्हारा फुटबाल मैच शुरू होने वाला है।

अंतरिक्ष को याद आया । वह फौरन नहाने के लिए दौड़ गया।

दादी ने दादा जी से कहा–अच्छा किया जो उसे फुटबाल मैच की याद दिला दी। वरना न जाने कब तक रूठा रहता। बड़ा हो रहा है तो रूठना भी सीख रहा है।

–अब अगर हम से नहीं रूठेगा तो किससे रूठेगा।

अंतरिक्ष के घर के पास घना जंगल था। वहां एक नदी भी बहती थी। जंगल में शहतूत, आलू बुखारा, आड़ू, सेब के ढेरों पेड़ थे। मौसम में ये फलों से लद जाते थे। इनके फल कोई तोड़ता नहीं था। नीचे गिरने पर कोई उठाता भी नहीं था। जब दादा, दादी जंगल में जाते तो नीचे गिरे फल उठा लाते। दादी कहतीं–इतने ताजे फल, और कोई खाने को तैयार नहीं, पता नहीं क्या बात है।

अंतरिक्ष के पापा कहते थे कि इनमें कोई गिलहरी, चिड़ियां घूम गई होंगी, इसलिए नहीं खाते हैं।

अरे, तो जो फल बाजार में बिकते हैं, उन पर भी तो गिलहरी, चिड़िया घूमती होंगी। उनके घूमने पर क्या रोक है। घर के फल तो ज्यादा अच्छे माने जाते हैं लेकिन यहां अपने ही पेड़ के फल खाने से लोगों को दिक्कत है।

बचपन में हम लोग आम–जामुन के पेड़ के नीचे इसलिए खड़े रहते थे कि काश फल नीचे टपक पड़ें और हम उठा लें। तोते के कुतरे अमरूद, आम तो सबसे पहले उठाए जाते थे। और यहां बेचारे रसभरे आलू बुखारा और आड़ू गाड़ियों के नीचे इतने कुचलते हैं कि सड़क भी लाल हो जाती है। दादी जैसे अपने आप से ही बातें कर रही थीं।

पता नहीं क्यों नहीं खाते हैं। अरे उन्हें साफ करके,

धोकर खा लो। –दादा जी की भी समझ में नहीं आता था।

वैसे भी बाहर से तो कोई भी फल लाओ उसे बिना धोए खाया ही नहीं जाता। तो इन नीचे पड़े फलों ने किसी का क्या बिगाड़ा है। –दादी अकसर परेशान होकर सोचती थीं।

दादी, दादा जी जो फल जंगल से लाते, या सड़क से उठाकर , दादी उन्हें अच्छी तरह से धोतीं। और खूब मजे से खातीं। वह कहतीं–आम के आम और गुठलियों के दाम। घूम भी आते हैं। और इतने फल भी ले आते हैं। बाजार से खरीदो तो कितने के आएं।

दादी की देखादेखी दादा जी, फिर पापा, फिर मम्मा और अंतरिक्ष भी उन फलों को खाने लगे।

आज अंतरिक्ष अपने स्कूल से लौटा तो बड़ा खुश था। दादी ने जब उसके सामने उसकी पसंद की अरहर की दाल और चावल परोसे तो वह खाने ही वाला था कि दादी बोलीं–अंतरिक्ष तुमने हाथ धोए।

–हां, मैंने जब स्कूल की ड्रेस बदली तभी धो लिए। रोज धोता हूं।

–अरे वाह, बहुत अच्छी बात है। तुम तो राजा बच्चे हो।

वह खाता हुआ बोला–दादी, आज मैंने वीनस के बारे में पढ़ा।

अच्छा, तब तो तुम बस तैयारी कर लो। अपने स्पेसशिप में बैठकर वीनस तक जाना।

अंतरिक्ष जोर से हंसा–दादी, वहां कैसे जाऊंगा।

–क्यों नहीं जा सकते।

–वहां तो आक्सीजन भी नहीं है। टीचर ने कहा था जहां आक्सीजन नहीं होती, वहां कोई नहीं जा सकता।

–तो आक्सीजन सिलेंडर ले जाना। जैसे बाकी लोग ले जाते हैं।

–ओफ ओह दादी, वहां तो इतना एसिड है कि दस मिनट में ही सब जल जाएंगे।

–ओह माई गाड, नहीं, नहीं ऐसी जगह हम नहीं जाएंगे। मगर एक काम तो हो सकता है कि अगर हम यहां से अपने साथ कुछ बर्फ के पहाड़ ले चलें। तब तो नहीं जलेंगे। देखो न घर के सामने ही बर्फ से भरे कितने पहाड़ हैं। उखाड़ लेंगे।

बर्फ के पहाड़ उन्हें कैसे ले जाएंगे।–अंतरिक्ष की समझ में नहीं आया–उनसे आक्सीजन कैसे मिलेगी।

दादी की बात सुनकर दादा जी बोले–क्यों बच्चे को ऐसी बातें बता रही हो जो हो नहीं सकतीं। अंतरिक्ष वीनस के बारे में और क्या पढ़ा, मुझे बताना। हम बृहस्पति, शनि, मंगल के बारे में भी पढ़ेंगे। ठीक है न।

अंतरिक्ष खुश हो गया। अब दोपहर में सोने से पहले उसे अपना मनपसंद फुटबाल मैच देखना था। उसके पास जितने भी फुटबाल वर्ल्डकप हुए थे, उनकी रिकार्डिंग थी। वह रोज उन्हें देखता था। दुनियाभर के खिलाड़ियों को पहचानता था। किसने कब कितने गोल किए, किसके गोल से किस टीम ने विजय हासिल की, सब पता था। यही नहीं उसे सबके घर–परिवार के बारे में जानकारी थी। कौन सा खिलाड़ी किस देश का था, कहां रहता था, उसके कितने बच्चे थे, कौन सी भाषा बोलता था, वह चुटकियों में बता सकता था। लेकिन आज तो दादा जी के साथ रिकार्डिंग नहीं, असली वाला मैच देखना था।

उसकी देखादेखी दादी जिन्हें खेलों में जरा भी दिलचस्पी नहीं थी, वह भी खूब मजे से फुटबाल मैच देखती थीं। गोल होने पर जब अंतरिक्ष तालियां बजाता, हो हो करता, नाचता तो दादी भी उसके साथ वैसा ही करतीं। दादी को नाचते देख, वह खूब हंसता। एक दिन दादा जी ने कहा अंतरिक्ष, लगता है, तुम अपनी दादी को भी मैसी और रोनाल्डो बनाकर छोड़ोगे। अंतरिक्ष का मन मैच देखकर ही न भरता। शाम को आराम करने और होमवर्क निपटाने के बाद अपने घर के बगीचे में दादा जी के साथ फुटबाल खेलता। वह दादा जी की तरफ फुटबाल उछालता, अगर वह उनसे बहुत दूर चली जाती, तो वह खुद दौड़कर फुटबाल उठाकर उन्हें देता। उसे पता था कि दादा जी उसकी तरह तेज दौड़ नहीं सकते।

दादा–दादी के लिए वह एक जीता–जागता खिलौना था। उसकी हर हरकत, उसका हर काम उन्हें बड़ा अच्छा लगता। अंतरिक्ष को यह भी पता था कि जब पापा या मम्मा उसे किसी बात पर डांटते हैं, तो उन्हें दादा –दादी की डांट

पड़ती है।

शाम को जब मम्मी-पापा आफिस से लौटते तो वह उन्हें सारी बातें बताता। दादी हंस-हंसकर सब सुनतीं और जहां वह कुछ बताने से रह जाता, उसे पूरा करतीं, याद दिलातीं-अंतरिक्ष, तुमने वो वाली बात तो बताई ही नहीं और अंतरिक्ष कहता -अरे हां, आज तो मैं दादी के साथ भी फुटबाल खेला था।

तब पापा समझाते -अंतरिक्ष दादा, दादी के साथ ध्यान से खेला करो। गिर गए तो चोट लग जाएगी।

अरे नहीं, नहीं, फुटबाल दूर चली जाती है तो बेचारा खुद दौड़-दौड़कर फुटबाल उठाकर लाता है कि कहीं हमें न दौड़ना पड़े। -दादा जी कहते।

दादी तो पापा को कभी-कभी थप्पड़ भी लगा देतीं। वह पापा की पीठ पर अपने दोनों हाथों से चटाक की आवाज निकालकर कहतीं हैं-क्यों रे, तू मेरे लड़के को क्यों डांट रहा है। पापा जब नहीं मानते, तो दादी रूठ जातीं। फिर पापा को उन्हें मनाना पड़ता। दादी शर्त लगातीं -वायदा कर कि आगे से उसे नहीं डांटेगा। इतना छोटा बच्चा है।

क्यों जब मैं छोटा था, तो तब तुम भी तो मुझे डांटती थीं। अपना भूल गई। पापा कहते।

तुझे याद है न कि जब मैं ऐसा करती थी, तो नानी जी मुझे हाथ में चिमटा लेकर डराती थीं कि अगर बच्चे को डांटा तो दो चिमटे मारेंगी। और अपनी नानी को याद करके पापा खूब हंसते थे।

दादी ने एक दिन पापा से कहा-अगर नानी जी होतीं तो इसे देखकर कितनी खुश होतीं। इसके लिए पता नहीं क्या-क्या बनातीं।

हां याद है। हमें बहुत प्यार करती थीं। अगर वह होतीं तो चाहे स्ट्रेचर पर डालकर लाना पड़ता, यहां एक बार तो जरूर लाता।-पापा बोले।

हां वो तैयार भी हो जातीं। उन्हें किसी चीज से डर नहीं लगता था। हवाई जहाज उड़ता तब भी न डरतीं। अब तो उन्हें गए कितने दिन हुए। और लौटकर सबको बतातीं कि तू कहां रहता है।

अंतरिक्ष सारी बातें सुन रहा था। उसने पूछा कितने दिन हुए दादी। तब मैं कहां था।

–तू तब कहीं और होगा।

–कहीं और, कहां। क्या मेरा और भी कोई घर था।

दादी क्या कहें। क्या बताएं कि जब उनकी मां नहीं रहीं तब अंतरिक्ष के पापा ही बहुत छोटे थे।

अंतरिक्ष स्कूल से लौट रहा था। वह बहुत नाराज था।

आज स्कूल में सीढ़ी उतरते हुए वह धड़ाम से गिरा था। उसकी कोहनी भी छिल गई थी। उसके कई दोस्त गिरने पर हंसे भी थे। हालांकि कई मदद के लिए दौड़े भी आए थे। गुस्सा वह इस बात पर था कि उसे चोट लगी थी, तो उसके दोस्त हंसे क्यों थे। उस चिढ़ाया क्यों था।

उसने पापा से शिकायत करते हुए कहा था–जब उनमें से कोई गिरेगा, खेलने से चोट लगेगी तो मैं भी हंसूंगा। बल्कि एक दिन मैं उन्हें सीढ़ियों से धक्का दे दूंगा।

पापा बोले–नहीं, नहीं, तुम ऐसा मत करना।

–क्यों न करूं। मैं हंसूंगा और ताली भी बजाऊंगा।

इसलिए कि जब तुम गिरे और वे हंसे तो तुम्हें बुरा लगा न। अगर तुम हंसोगे तो उन्हें बुरा लगेगा या नहीं। ऐसे तो बात कभी खत्म नहीं होगी। दोस्तों से लड़ना अच्छी बात नहीं होती।

–हां ।

और अगर तुम भी वैसा ही करोगे, तो उन्हें पता कैसे चलेगा कि उन्होंने गलत किया था। जब किसी को चोट लगे, कोई परेशान हो, तो उसकी मदद करनी चाहिए। न कि उस पर हंसना चाहिए।

अंतरिक्ष ने सुना। सोचने लगा–ये हमेशा अच्छा बच्चा क्यों बनना चाहिए। क्या दूसरों के मम्मी–पापा भी उनसे यही कहते हैं।

––

इतवार यानि कि छुट्टी का दिन। मम्मा, पापा सो रहे थे मगर दादा जी और दादी उठ गई थीं। अंतरिक्ष भी चुपके से नीचे उतरकर आया। दादी ने उसे देखा तो बोलीं–अरे तुम इतनी जल्दी उठ गए। उसने मुसकराकर उन्हें देखा और अपना बस्ता उठा लाया।

कापी निकाली और मेज पर बैठकर एक किताब से देखकर मगरमच्छ बनाने लगा। उसने उसमें लाल रंग भर दिया। फिर दादा जी को दिखाने लगा। दादा जी बोले–यह क्या बनाया है।

–मगरमच्छ ।

–लाल मगरमच्छ । वाह यह तो पहली बार देखा है।

–अभी तो मुझे चीता और सांप भी बनाना है।

–क्यों।

–टीचर ने होम वर्क दिया है।

–अच्छा।

फिर वह खुद ही बताने लगा–टीचर ने डेंजरस एनीमल्स के बारे में बताया था। उनसे कैसे बच सकते हैं , यह भी बताया।

–चीते से कैसे बच सकते हैं।

–बताऊंगा, बताऊंगा । मैं लिखूंगा तो आप पढ़ना।

लेकिन अंतरिक्ष ने चीते के पास ही एक हिरन भी बना दिया।

उसे देख दादा जी बोले–अरे अंतरिक्ष तुमने तो चीते के एकदम पास हिरन भी बना दिया। चीता तो इसे खा जाएगा।

–नहीं वह उसका दोस्त है।

–कैसे भई।

उस दिन आपने ही तो एक कहानी सुनाई थी। चीते ने हिरन के बच्चे को बचाया था। उसे पाला था। उसके लिए शिकार भी करके लाता था। मगर हिरन तो मीट नहीं खाता, इसलिए वह चीते के साथ जंगल में जाकर घास खाता था।

हां सुनाई तो थी, मगर वो तो कहानी थी। तुम्हें तो वे बातें लिखनी हैं न जो टीचर ने बताई थीं।।

–लेकिन मैं वो भी तो लिख सकता हूं जो आपने बताया था।

–नहीं स्कूल में टीचर ने जो बताया वे बातें लिखो। कहानी की बात घर में होती है।

–स्कूल में क्यों नहीं।

दादा जी क्या कहें। उन्होंने कहा– अच्छा, चलो मैं तुम्हें एक ऐसी कहानी सुनाऊंगा, जिसमें चीता हिरन को

खा गया तब तो ठीक रहेगा।

–नहीं, मुझे नहीं सुननी ऐसी कहानी। चीता अपने दोस्त को क्यों खाएगा। कल तो पापा कह रहे थे कि दोस्तों से लड़ना भी नहीं चाहिए। फिर दोस्त दोस्त को मारकर खा कैसे सकता है।

सारे चीते हिरनों के दोस्त थोड़े ही होते हैं। वह तो कभी–कभी बन जाते हैं। वरना वे तो उनका शिकार ही करते हैं।–दादा जी बोले।

मम्मा नीचे उतरीं। वह किचन में गईं तो बोलीं–अरे अम्मा, आपने तो सब कुछ बना दिया। नाश्ता और खाना भी। कितनी जल्दी उठ गई थीं।

जल्दी कहां। उसी वक्त उठी थी। चाय तैयार है। अभी देती हूं। –कहती हुई दादी चाय छानने लगीं।

चाय पीती मम्मा बोलीं– मै सोच रही हूं कि नाश्ते के बाद बाजार चली जाऊं। सारा सामान खत्म है। आप चलेंगी। चलिए थोड़ा बाहर निकलना होगा।

मम्मा की बात सुनकर अंतरिक्ष बोला–मैं भी चलूंगा। और दादा जी भी।

ठीक है चलते हैं। जल्दी से नहा लो। तैयार हो जाओ।–कहकर दादा जी उठे और तैयार होने चले गए।

सब नहाकर तैयार हो गए। पापा भी उठ चुके थे। लेकिन यह क्या, तेज बारिश होने लगी। सारे पेड़-पौधे बारिश की खुशी मे नाचने लगे।

अब बाजार कैसे जाएं। यहां से तो कार में चले जाएंगे। लेकिन पार्किंग से बाजार तक चलना पड़ेगा और सब भीग जाएंगे। इतनी तेज बारिश से तो छतरी भी नहीं बचाएगी।

दादा–दादी वापस भारत आ गए थे। उन्हें अंतरिक्ष की बहुत याद आती थी। अंतरिक्ष की दादी से खूब बातचीत होती थी। वह अकसर अपने माता–पिता की शिकायत दादा दादी से करता और पूरे परिवार के बीच में एक खेल शुरू हो जाता। वह कहता–दादी, पापा ने आज फिर मुझे जापड़(झापड़) मारा।

उसका झापड़ बस इतना ही होता था कि पापा बस हलके से उसका गाल भर छू लें। और वह उसकी शिकायत करता था।

एक दिन दादी ने उससे कहा–अंतरिक्ष तू चिंता मत कर तेरा पापा जितने झापड़ मारता है, तू उन सबको गिनता जा। जब आऊंगी न तो एक–एक झापड़ का हिसाब लूंगी।

मैंने गिन लिया है। अभी तक 491 झापड़ मारे हैं।

हे भगवान, तूने एक–एक का हिसाब लगा लिया। फोन पर अंतरिक्ष के पापा सब सुन रहे थे। वह बोले–लो, पांच सौ पूरे होने में नौ की कमी है। लो पूरे पांच सौ कर देता हूं।

दादी हंसते–हंसते–चिल्लाई–तुझे शर्म नहीं आती। जो इतने छोटे बच्चे को ऐसे मारता है। वहां आकर मैं तेरी ऐसी खबर लूंगी कि याद रखेगा।

उधर से अंतरिक्ष की बनावटी चीखें सुनाई दे रही थीं–दादी देखो फिर मारा, फिर मारा और वह जोर–जोर से हंसता भी जाता।

दादा जी भी हंस रहे थे–उसे भी पता है सबके बीच में खेल चल रहा है। इसे कहते हैं प्यार की मार–पिटाई।

–और क्या।

उसके बिना मन भी तो नहीं लगता। दादी ने ठंडी आह भरते हुए कहा।

क्या पता था कि वह हमसे इतना दूर रहेगा कि उसे बढ़ता हुआ भी नहीं देख सकेंगे। दादा जी भी दुखी थे।

कोई बात नहीं, न सही पूरे साल, दो महीने तो उसके साथ रह लेते हैं। बस हम रिटायर हो जाएं तो वहीं चले जाएंगे। बच्चों को भी सहारा हो जाएगा, हमें भी । यहां कब तक अकेले रहेंगे।

तभी फोन बजने लगा। देखा कि अंतरिक्ष के पापा का व्हाटस एप पर वीडियो काल आ रहा था। दादी हंसी–जरूर अंतरिक्ष कर रहा होगा। उसके स्कूल जाने का समय है न। हर रोज उसे बात करनी होती है। बदमाश कहीं का। और दादी उससे बातें करने लगीं।

संपर्कः

मो. 9818258822

लोहिया का मानव-सामीप्यवादी मूल्य-बोध

डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी

डॉ. राममनोहर लोहिया की गिनती उन गिने-चुने राजनीतिज्ञों में होती है जिनकी बौद्धिकता, प्रखरता तथा सादगी ने भारतीय जनता को गहरे रूप से प्रभावित किया। अपनी देशभक्ति और समाजवादी विचारों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण डॉ. लोहिया ने अपने समर्थकों के साथ ही अपने विरोधियों के बीच भी सम्मान हासिल किया। लोहिया दर्शन पर हिंदी में पर्याप्त सामग्री साहित्य एवं उनकी रचनावली के रूप में उपलब्ध है। फिर भी, लोहिया दृष्टि को सार रूप में, स्पष्टता एवं तार्किकता के साथ पेश किए जाने की जरूरत बनी हुई थी। प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक नंदकिशोर आचार्य की सद्य-प्रकाशित पुस्तक लोहिया: मानव सामीप्य का दर्शन इस कमी को बहुत हद तक पूरा करती है। यह पुस्तक अपने विषयवस्तु के कारण पाठकों एवं आलोचकों का ध्यान अपनी ओर खींचती है। पुस्तक लोहिया के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और सभ्यता-संस्कृति संबंधी दर्शन के विभिन्न पहलुओं को प्रामाणिकता के साथ पाठकों के सामने लाती है, जिसमें उनके अनूठे दृष्टिकोण और समय के महत्वपूर्ण मुद्दों पर उनके चिंतन की झलक मिलती है। यह पुस्तक लेखक की अनूठी और गहन अनुसंधानपरक दृष्टि का परिचायक है। नंदकिशोर आचार्य हिंदी विमर्श की दुनिया के प्रथम पंक्ति के विचारक हैं जिन्हें संस्कृति विमर्श पर गहन लेखन का अनुभव है। अहिंसा-दर्शन, गांधी विचार, मानवाधिकार, शिक्षा संस्कृति-विचार आदि पर उनकी दृष्टि से पाठक भली-भांति परिचित हैं। इस पुस्तक की विशेषता लोहिया के चिन्तन की उस कमी को पूरा करने का प्रथम प्रयास है जिसमें उन्होंने लोहिया को समाजवादी विचारक से भिन्न मानव सामीप्यवादी समाजवादी चिन्तक के रूप में स्थापित किया है।

इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों से यह स्पष्ट होता है कि लोहिया निरंतर वैचारिक और दार्शनिक विषयों के साथ जूझते रहे। समाजवादी राजनीतिज्ञ होने के कारण उनकी विभिन्न विचारधाराओं के दार्शनिक और व्यावहारिक पक्षों में गहरी रूचि थी। अपने युवा जीवन में गांधी और उनके आर्थिक दर्शन के अनुयायी होने के कारण लोहिया के लेखन में बार-बार गांधी के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सिद्धांतों का उल्लेख प्राप्त होता है। जहाँ एक तरफ वह गांधी चिंतन को इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक विचारों में से एक मानते हैं, वहीं दूसरी तरफ वह उनके विचारों

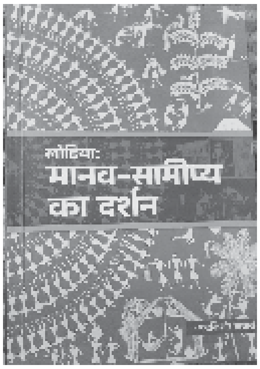

प्रकाशक:
आईटीएम पब्लिकेशन,
आईटीएम यूनिवर्सिटी ग्वालियर
लेखक:
नंद किशोर आचार्य
मूल्य : ₹150

और आदर्शों को समय–समय पर प्रश्नांकित भी करते हैं।

सभ्यता की अवधारणा शीर्षक से प्रारंभ इस पुस्तक में लेखक का मानना है कि 'किसी भी विचारक के सभ्यता से संबंधित विचारों को समझने के लिए सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक हो जाता है कि वह मनुष्य की क्या अवधारणा करता, उसके जीवन के अर्थवत्ता के लिए किन मूल्यों को केंद्रीय मानता तथा उससे किस तरह के आचरण की अपेक्षा करता है'। यद्यपि लोहिया ईश्वर अथवा परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते तथापि उनके मनुष्य की अवधारणा में भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय अवश्य दिखता है। लेखक लोहिया की सभ्यता संबंधी अवधारणा पर महात्मा गांधी के प्रभाव का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि महात्मा गांधी की तत्व मीमांसा यह मानती है कि संपूर्ण अस्तित्व एक है, जिसका मानवीय भावनात्मक और आचरणगत प्रतिफलन अहिंसा अर्थात प्रेम और करुणा है।

आधुनिक सभ्यता की सम्यक आलोचना करते हुए डॉ. लोहिया आधुनिक सभ्यता में विज्ञान के निरंतर बढ़ते प्रयोग, जीवन स्तर और सामाजिक समानता में वृद्धि को साभ्यतिक विशिष्टता के रूप में रेखांकित करते हैं। लेकिन, अपने निष्कर्ष में वह कहते हैं कि आधुनिक सभ्यता की यह तीनों विशेषताएं एक खास तरह के संकट में पड़ गई है क्योंकि औद्योगिक सभ्यता के परिणामस्वरुप मानव के मन और शरीर को जिस तनाव, संवेग, क्लान्ति और क्षय से ग्रस्त होना पड़ा है उससे पश्चिमी यूरोप के लोगों का वैज्ञानिक सभ्यता की निरुद्देश्यता और निरर्थकता पर विश्वास अडिग हो चला है। डॉ. लोहिया के अनुसार, आधुनिक सभ्यताएं टूट रही हैं क्योंकि इसने आध्यात्मिक समानता प्राप्त करने की कोई कोशिश नहीं की। वर्तमान सभ्यता निर्धनता, भय और युद्ध की जन्मदात्री है। उक्त के मद्देनजर अपने विवेचन में डॉ. लोहिया एक ऐसी सभ्यता की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं जिसकी आधारभूमि भौतिकता और आध्यात्मिकता के सृजनात्मक मेल पर खड़ी हो।

लोहिया के इतिहास दर्शन को लेखक इतिहास की मौलिक और सूक्ष्म विवेचना मानते है। लोहिया का मानना है कि इतिहास का अध्ययन उन नियमों की खोज करने के लिए होना चाहिए जो उसकी गतिशीलता की पृष्ठभूमि में रहते हैं, ताकि भविष्य की बुराइयों के कारणों को खोज कर उसका निराकरण करने के लिए मनुष्य को वैचारिक साधन उपलब्ध हो सके।

सामीप्य और समानता की व्याख्या करते हुए लेखक लोहिया की चार तरह की समानताओं का जिक्र करते हैं, जिसमें आंतरिक और बाह्य समानता तथा भौतिक और आध्यात्मिक समानता का जिक्र महत्वपूर्ण है। लेखक का मत है कि दरअसल लोहिया का लक्ष्य सभी आयामों में समतापूर्ण समाज की स्थापना करना है। इसके लिए लोहिया समानता के पीछे काम कर रही आवश्यक मनोवैज्ञानिक विचार–पद्धतियों पर सूक्ष्म चिंतन करते हैं। लोहिया के अनुसार, मानव समाज जब तक समानता के चारों अर्थों को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे वास्तविक समानता का प्रमाणिक अनुभव नहीं हो सकता। समानता के अपने विवेचन में डॉ. लोहिया आधुनिक सभ्यता द्वारा समानता के गहरे अर्थ को विस्मृत कर दिए जाने की ओर संकेत करते हैं जिसे वह आंतरिक समानता कहते हैं।

लोहिया के अर्थ–दर्शन की विवेचन करते हुए लेखक यह तर्क देते हैं कि किसी भी विचारक के अर्थशास्त्रीय चिंतन को इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए कि उनकी दृष्टि में मनुष्य के विकास की वाँछनीय दिशा क्या है और क्या उनका अर्थशास्त्रीय चिंतन उस उद्देश्य की ओर ले जाने का आग्रह करता है। लेखक का मत है कि डॉ. लोहिया मनुष्य को केवल ऐन्द्रिक अस्तित्व मात्र नहीं मानते और मानव विकास का उनका वांछनीय लक्ष्य समानता और सामीप्य पर आधारित ऐसी सभ्यता का विकास है जो मानव एकता को पुष्ट करती हो और समस्त मानव जाति के कल्याण को आदर्श मानती हो। अपने अर्थशास्त्रीय विवेचन के क्रम में डॉ. लोहिया मानव जाति के लिए सम्मानजनक जीवन स्तर की आवश्यकता पर बल देते हैं। डॉ. लोहिया के लिए जीवन की गुणवत्ता अस्तित्व मात्र के साथ एकत्व का बोध अर्थात आध्यात्मिक और संवेदनात्मक संबंध स्थापित करने में है और भौतिक समानता अर्थात सम्मानजनक जीवन स्तर इसकी पूर्व–शर्त है। उनकी दृष्टि में आर्थिकी का लक्ष्य जीवन की बहुआयामी और समावेशी गुणवत्ता की प्रक्रिया को गतिशील करने में है जिसे वह समानता, बंधुत्व या सामीप्य और विराट से जुड़ने का आनंद कहते हैं।

राजनैतिक दर्शन पर बात करते हुए लेखक यह मानते हैं कि लोहिया का राजनीतिक चिंतन गांधी से प्रेरित किंतु

कुछ मामलों में थोड़ा भिन्न है। अपने विश्लेषण के क्रम में वह कहते हैं कि लोहिया राजनीतिक विकेंद्रीकरण की गांधी की अवधारणा से तो सहमत हैं लेकिन आत्मनिर्भर गांव का विचार उन्हें अव्यावहारिक लगता है। लेखक का मानना है कि लोहिया की चौखंबा राज की अवधारणा वस्तुतः महात्मा गांधी की विकेंद्रीकरण की अवधारणा की संरचनात्मक व्याख्या है, जहाँ चारों खंभों यथा- स्थानीय, क्षेत्रीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय को समान स्तर पर रखा गया है। लोहिया यह प्रस्तावित करते हैं कि चारों ही स्तरों को अपने-अपने क्षेत्राधिकार में कानून एवं योजनाएं बनाने-चलाने तथा कर नीति के संवैधानिक अधिकार प्राप्त होंगे और यह एक-दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करेंगे। लोकतंत्र में सत्याग्रह या अहिंसक प्रतिकार पर बल देते हुए डॉ. लोहिया कहते हैं कि जनता अपनी शिकायतों या भुखमरी का समाधान ना निकल पाने पर पाँच साल तक इंतजार नहीं कर सकती। उनका एक प्रसिद्ध कथन है कि जिंदा कौमें पाँच साल तक इंतजार नहीं करतीं।

डॉ. लोहिया के राजनीतिक दर्शन में सप्तक्रान्ति की अवधारणा एक महत्वपूर्ण चरण है, जिससे पूरे विश्व में व्याप्त संरचनात्मक हिंसा से संघर्ष किया जा सके। लोहिया का मानना था कि भारतीय समाज का पतन यहां व्याप्त अनेक विषमताओं के कारण हुआ है। उनके अनुसार, सामाजिक विषमताओं में वर्ण-व्यवस्था (उन्होंने वर्ण-व्यवस्था एवं जाति प्रथा को पृथक अवधारणा नहीं माना है), जातिवाद, लैंगिक असमानता, अस्पृश्यता, रंग-भेद-नीति और साम्प्रदायिकता प्रमुख हैं। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक विषमताओं की कड़ी आलोचना की तथा समता पर आधारित समाज व्यवस्था के निर्माण पर जोर दिया। सामाजिक कुरीतियों में जाति प्रथा को डॉ. लोहिया सर्वाधिक विनाशकारी मानते थे।

लोहिया जाति, वर्ण, धर्म, वंश, लिंग, संस्कृति, सम्पत्ति आदि की विषमताओं से मुक्त एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की कल्पना कर रहे थे जो कर्म प्रधान हो और व्यवहार से पुष्ट हो। वे समाजवाद को 'समानता एवं सम्पन्नता' के साथ जोड़कर, उसे व्यावहारिक रूप देना चाहते थे। लेखक का मानना है कि लोहिया की सप्त-क्रान्ति की अवधारणा सामीप्योन्मुख समानता की लक्ष्य-सिद्धि के लिए अहिंसक संघर्ष का आह्वान है। लोहिया ने ऐसी पाँच प्रकार की असमानताओं को चिह्नित किया जिनसे एक साथ लड़ने की आवश्यकता है: स्त्री और पुरुष के बीच असमानता, त्वचा के रंग के आधार पर असमानता, जाति आधारित असमानता, कुछ देशों द्वारा दूसरे देशों पर औपनिवेशिक शासन, आर्थिक असमानता। इन पाँच असमानताओं के खिलाफ उनके संघर्ष ने पाँच क्रांतियों का गठन किया। इस सूची में उनके द्वारा दो और क्रांतियों को जोड़ा गया: नागरिक स्वतंत्रता के लिये क्रांति (निजी जीवन पर अन्यायपूर्ण अतिक्रमण के खिलाफ) और सत्याग्रह के पक्ष में हथियारों का त्याग कर अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करने के लिए क्रांति। ये सात क्रांतियाँ या सप्त क्रांति लोहिया के लिये समाजवाद का आदर्श थीं।

लोहिया के संस्कृति-चिन्तन को लेखक मानव-जाति की एकता अथवा सामीप्य के परिप्रेक्ष्य में देखने की वकालत करते हैं। अपने संस्कृति चिन्तन में मानव-एकता पर जोर देते हुए लोहिया इतिहास में सामीप्य की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करते हैं तथा मानव एकता के लिए सांस्कृतिक सामीप्य का आग्रह करते हैं। साथ ही, लोहिया शारीरिक सामीप्य का भी आग्रह करते हैं जिससे उनका तात्पर्य अन्तर्जातीय तथा अंतर्स्थलीय विवाह से है। इस क्रम में लोहिया सामीप्य के अन्य कारकों यथा-विचारों, धर्मों, उत्पादन-तकनीकों और जीवन-शैलियों का भी जिक्र करते हैं। किसी भी चिन्तक के संबंध में विचारपरक लेखन करते समय सबसे बड़ी चुनौती उनके विचारों को समग्रता में प्रस्तुत करने एवं पाठकों के साथ वैचारिक संवाद की संभावना पैदा करने की होती है। यह पुस्तक इस मायने में गागर में सागर की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए लोहिया के संपूर्ण चिंतन को समझने के लिए एक अनिवार्य पाठ के रूप में हमारे सामने आती है। नंदकिशोर आचार्य की यह पुस्तक हमारे समय का एक सार्थक दस्तावेज है जो अपनी भाषायी काव्यात्मकता के साथ डॉ.लोहिया के समाजवादी चिन्तन की समझ एवं गांधी-विनोबा के दर्शन के साथ उनके गहरे वैचारिक सरोकार को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

संपर्क:

सहायक आचार्य, वर्धा समाज कार्य संस्थान

क्षेत्रीय केंद्र, प्रयागराज

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

ई-मेल : mkt1980@gmail.com

मो. 9764969689

गांधी क्विज–10

प्रश्न–1 गांधी की पुस्तक 'सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका' का अंग्रेजी अनुवाद किसने किया था?

उत्तर क. वी जी देसाई
ख. मनुबेन
ग. सुशीला नैयर
घ. महादेव देसाई

प्रश्न–2 गांधीजी जब पढ़ाई के लिए लंदन पहुंचे तो उनकी उम्र कितनी थी?

उत्तर क. 17
ख. 19
ग. 20
घ. 21

प्रश्न–3 कस्तूरबा गांधी की समाधि कहाँ स्थित है?

उत्तर क. वर्धा
ख. पोरबंदर
ग. पुणे
घ. अहमदाबाद

प्रश्न–4 कस्तूरबा गांधी की मृत्यु कहां हुई?

उत्तर क. यरवदा जेल
ख. वर्धा जेल
ग. लाल किला, दिल्ली
घ. आगा खां महल, पुणे

प्रश्न–5 गांधीजी को प्रभावित करने वाली किताब 'अनटु दिस लास्ट' किसने लिखी थी?

उत्तर क. वी जी देसाई
ख. जॉन रस्किन
ग. टोल्सटॉय
घ. महादेव देसाई

प्रश्न–6 दूसरे गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी के साथ इनमें से कौन नहीं गया था?

उत्तर क. सरोजिनी नायडू
ख. मीराबेन
ग. मदन मोहन मालवीय
घ. पंडित जवाहर लाल नेहरू

प्रश्न–7 सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत कहाँ से हुई ?

उत्तर क. साबरमती आश्रम
ख. फीनिक्स आश्रम
ग. मगन आश्रम
घ. सेवाग्राम

प्रश्न–8 गांधीजी का अंतिम संस्कार किस स्थान पर हुआ?

उत्तर क. राजघाट, नई दिल्ली
ख. पवनार
ग. अगस्त मैदान बंबई
घ. कुरुक्षेत्र

प्रश्न–9 कस्तूरबा की मृत्यु कब हुई थी?

उत्तर क. 19 फरवरी
ख. 20 फरवरी
ग. 21 फरवरी
घ. 22 फरवरी

प्रश्न–10 गांधीजी ने अपना अंतिम उपवास कहाँ पर किया?

उत्तर क. बिरला हाउस नई दिल्ली
ख. आगा खां महल, पुणे
ग. भोपाल
घ. कलकत्ता

गांधी क्विज–8 की विजेता हैं–
ममता सेठी
(आपको उपहार में गांधी साहित्य भेजा जा रहा है।)

नोट: आप गांधी क्विज के उत्तर antimjangsds@gmail.com पर भेज सकते हैं।
प्रथम विजेता को उपहार स्वरूप गांधी साहित्य दिया जायेगा।

गतिविधियाँ

‘गांधी दर्शन आर्ट गैलरी’ का शुभारंभ

लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला ने 6 जनवरी 2025 को राजघाट स्थित 36 एकड़ में फैले गांधी दर्शन परिसर में नव विकसित ‘गांधी दर्शन कला दीर्घा’ का उद्घाटन किया। इस उद्घाटन कार्यक्रम में देशभर से लगभग 100 कलाकारों ने भाग लिया। इस अवसर पर प्रसिद्ध मूर्तिकार राम सुतार विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता पूर्व केंद्रीय मंत्री और गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के उपाध्यक्ष विजय गोयल ने की।

इस अवसर पर कलाकारों और मूर्तिकारों की विशिष्ट सभा को संबोधित करते हुए ओम बिरला ने गांधी दर्शन द्वारा कला अभिव्यक्ति के लिए एक मंच प्रदान करने की इस पहल की सराहना की।

अपने संबोधन में विजय गोयल ने कहा, “इस कला दीर्घा का उद्देश्य कलाकारों को उनकी पेंटिंग्स, मूर्तियों और अन्य रचनात्मक कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए एक खुले और प्रेरणादायक वातावरण में मंच प्रदान करना है।”

समिति निदेशक डॉ ज्वाला प्रसाद ने कहा कि आर्ट गेलरी के माध्यम से गांधी दर्शन परिसर, जिसमें महात्मा गांधी के जीवन पर आधारित चार संग्रहालय भी हैं, में आने वाले दर्शकों की संख्या में वृद्धि होगी। कार्यक्रम में समिति के प्रशासनिक अधिकारी श्री संजीत कुमार भी उपस्थित थे।

चिल्ड्रन सोशल कॉन्क्लेव का आयोजन

गांधी दर्शन, राजघाट में 22 जनवरी 2025 को चिल्ड्रन सोशल कॉन्क्लेव का आयोजन किया गया। इसका उद्घाटन समिति के माननीय उपाध्यक्ष श्री विजय गोयल ने किया। कार्यक्रम में दिल्ली और एनसीआर के 50 स्कूलों के बच्चों की "सतत जीवनशैली और जलवायु परिवर्तन" विषय पर प्रोजेक्ट प्रतियोगिता हुई।

प्रतियोगिता में शिवाजी पार्क स्थित लिटिल फ्लावर्स पब्लिक स्कूल ने जीत हासिल की, जिन्हें "वसुधैव कुटुंबकम रनिंग ट्रॉफी" प्रदान की गई। कार्यक्रम में समिति निदेशक डॉ ज्वाला प्रसाद, और कार्यक्रम अधिकारी श्री वेदाभ्यास कुंडु उपस्थित थे। इस अवसर पर निर्णायक मंडल में शामिल थे: श्रीमती सौमिदत्ता गुप्ता (पर्यावरण विशेषज्ञ), श्रीमती इंदिरा गणेश (धरोहर विशेषज्ञ), श्री संजीत कुमार (प्रशासनिक अधिकारी, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति)और श्री उद्भव शांडिल्य (पीएचडी शोधार्थी)।

नेताजी को श्रद्धांजलि अर्पित

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति ने 26 जनवरी 2025 को गांधी दर्शन, राजघाट में नेताजी सुभाष चंद्र बोस की 128वीं जयंती "पराक्रम दिवस पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। समिति के निदेशक डॉ. ज्वाला प्रसाद ने समस्त कर्मचारियों और सांस्कृतिक संसाधन एवं प्रशिक्षण केन्द्र (CCRT), द्वारका में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे नौ राज्यों के लगभग 120 शिक्षकों के साथ नेताजी को पुष्पांजलि अर्पित की।

इस अवसर पर मिस्टर इंडिया इंटरनेशनल 2017, श्री दारा सिंह खुराना मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। कार्यक्रम में सीसीआरटी के उप निदेशक डॉ. राहुल कुमार, समिति के कार्यक्रम अधिकारी डॉ. वेदाभ्यास कुंडू और प्रशासनिक अधिकारी श्री संजीत कुमार भी उपस्थित थे। उन्होंने शिक्षकों के साथ संवाद किया और नेताजी के योगदान पर विचार साझा किए।

गांधी की 77वीं पुण्यतिथि पर सर्व धर्म प्रार्थना सभा

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 77वीं पुण्यतिथि के अवसर पर 30 जनवरी, 2025 को गांधी स्मृति में सर्वधर्म प्रार्थना सभा का आयोजन किया गया। माननीय उपराष्ट्रपति श्री जगदीप धनखड़, प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी, लोकसभा अध्यक्ष श्री ओम बिरला, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के उपाध्यक्ष श्री विजय गोयल, केन्द्रीय मंत्री मनसुख मांडवीया सहित अनेक गणमान्य लोगों ने बापू को श्रद्धासुमन अर्पित किए। इस कार्यक्रम में समाज के विभिन्न क्षेत्रों से आये हजारों लोगों ने सांयकालीन प्रार्थना सभा में शिरकत की।

इस अवसर पर दिल्ली, मेरठ, गाजियाबाद के 50 स्कूलों के लगभग 300 बच्चों ने महात्मा गांधी को संगीतमय श्रद्धांजलि अर्पित की। विभिन्न धर्मगुरुओं द्वारा सर्वधर्म प्रार्थना सभा की गयी। प्रसिद्ध गायिका कौशिकी चक्रवर्ती ने भक्ति गायन प्रस्तुत किया। गांधीजी को दो मिनट की मौन श्रद्धांजलि के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। कार्यक्रम में समिति के निदेशक डॉ ज्वाला प्रसाद, प्रशासनिक अधिकारी संजीत कुमार सहित अनेक गणमान्य लोग उपस्थित थे।

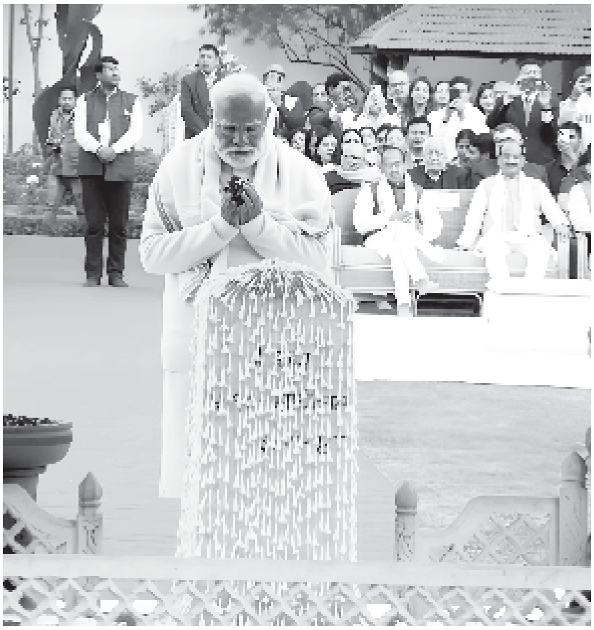

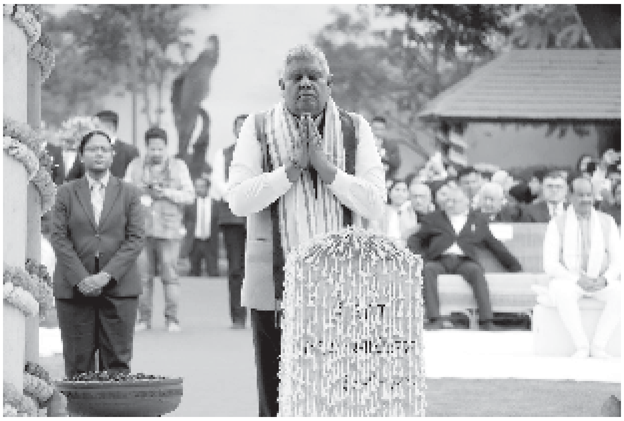

फोटो – रोकेश शर्मा व गणेश कुमार

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली

'अंतिम जन' मासिक पत्रिका

(सदस्यता प्रपत्र)

मैं गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति द्वारा प्रकाशित अंतिम जन मासिक पत्रिका, (हिन्दी) का/की ग्राहक ....वर्ष/वर्षों के लिये बनना चाहता/चाहती हूँ।

	वर्ष	रुपये		वर्ष	रुपये
[ ]	एक प्रति शुल्क	20/-	[ ]	दो वर्ष का शुल्क	400/-
[ ]	वार्षिक शुल्क	200/-	[ ]	तीन वर्ष का शुल्क	500/-

.... बैंक चेक संख्या/डिमान्ड ड्राफ्ट संख्या ....

दिनांक .... राशि .... Director, Gandhi Smriti & Darshan Samiti, New Delhi में देय, संलग्न है।

ग्राहक का नाम (स्पष्ट अक्षरों में): ....

व्यवसाय : ....

संस्थान : ....

पता : ....

....

पिन कोड : .... राज्य : ....

दूरभाष (कार्यालय) .... निवास .... मोबाईल..............................

ई मेल : ....

हस्ताक्षर ....

कृपया इस प्रोफॉर्मा को भरकर (शुल्क) राशि (चेक/ड्राफ्ट) सहित निम्नलिखित पते पर भेजें :

प्रधान संपादक

'अंतिम जन' मासिक पत्रिका

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली - 110002

आप हमसे संपर्क कर सकते हैं :- दूरभाष : 011-23392796

ई मेल : antimjangsds@gmail.com, 2010gsds@gmail.com

अगर आप 'अंतिम जन' पत्रिका के नियमित पाठक बनना चाहते हैं तो अकाउंट में पेमेंट कर भुगतान की प्रति या स्क्रीनशॉट और अपना पत्राचार का साफ अक्षरों में पता, पिनकोड, मोबाईल नंबर, ईमेल आईडी सहित भेजें।

Name – Gandhi Smriti & Darshan Samiti
A/c No. - 90432010114219
IFSC Code- CNRB0019043
Bank – Canara Bank
Branch – Khan Market, New Delhi-110003

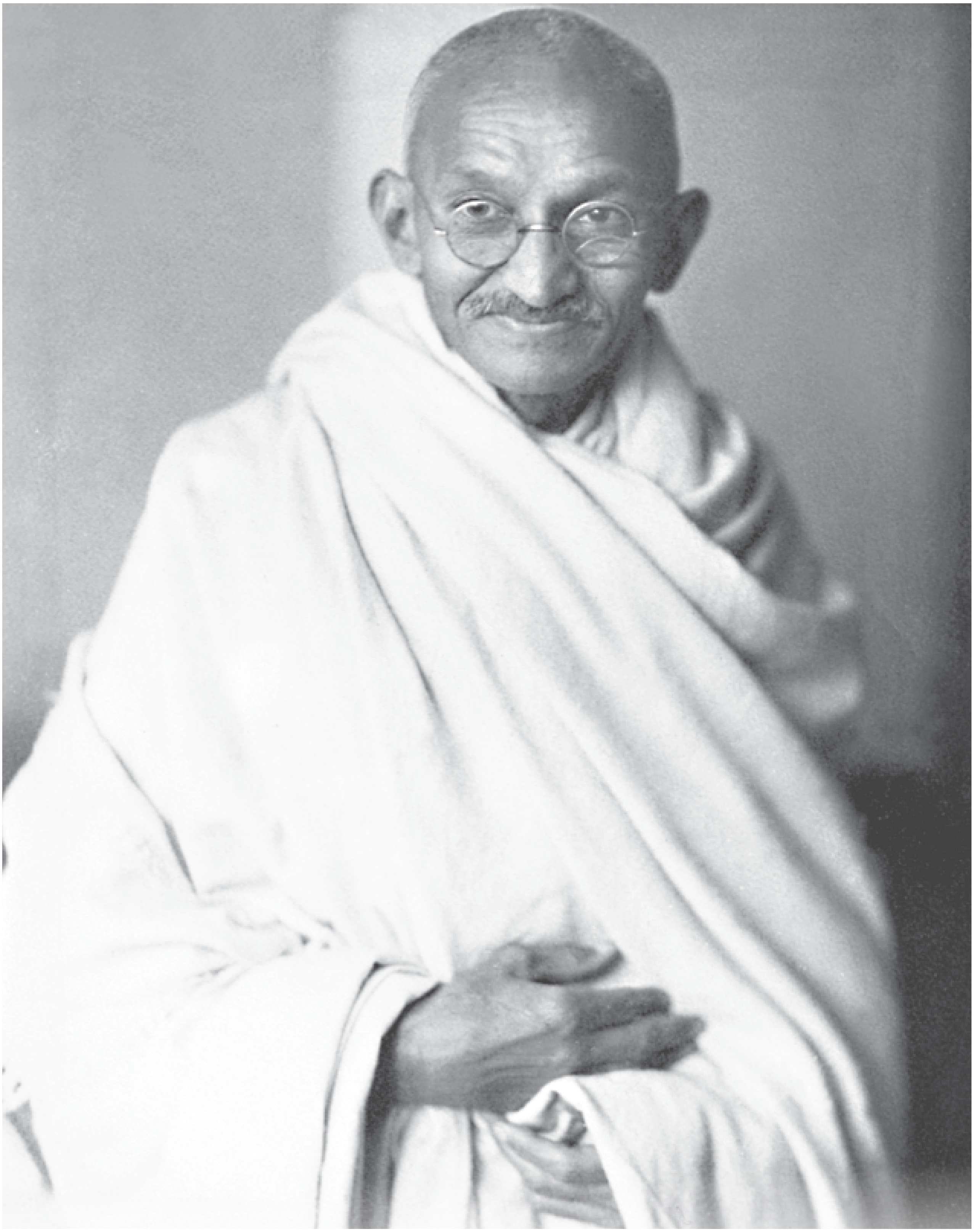

मैं उस रोशनी के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ जो हमारे चारों और व्याप्त अंधकार को मिटा दे। जिन्हें अहिंसा की जीवन्तता में आस्था है वे आएं और मेरे साथ इस प्रार्थना में शामिल हो।

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

हमारे आकर्षण

गांधी स्मृति म्यूजियम (तीस जनवरी मार्ग)

* गांधी स्मृति म्यूजियम
* डॉल म्यूजियम
* शहीद स्तंभ
* मल्टीमीडिया प्रदर्शनी
* महात्मा गांधी के पदचिन्ह
* महात्मा गांधी का कक्ष
* महात्मा गांधी की प्रतिमा
* वर्ल्ड पीस गोंग
* डिजिटल सिग्नेचर (रोबोटिक)

गांधी दर्शन (राजघाट)

* गांधी दर्शन म्यूजियम
* क्ले मॉडल प्रदर्शनी
* गांधीजी को समर्पित रेल कोच प्रदर्शनी
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री (200 लोगों के लिये)
* सेमीनार हॉल (150 लोगों के लिये)
* कॉन्फ्रेंस हॉल (300 लोगों के लिये)
* प्रशिक्षण हॉलः (80 लोगों के लिये)
* ओपन थियेटर
* राष्ट्रीय स्वच्छता केन्द्र
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री
* गांधी दर्शन आर्ट गैलरी

(डॉ. ज्वाला प्रसाद)
निदेशक

प्रवेश निःशुल्क (प्रातः 10 बजे से सायंः 6.30 बजे तक), सोमवार अवकाश

हॉल, कमरों एवं आर्ट गैलरी की बुकिंग के लिये संपर्क करें– ईमेलः 2010gsds@gmail.com, 011-23392796

gsdsnewdelhi www.gandhismriti.gov.in

RNI NO. DELHIN/2018/76242

''आप मुझे जो सजा देना चाहते हैं, उसे कम कराने की भावना से मैं यह बयान नहीं दे रहा हूँ। मुझे तो यही जता देना है कि आज्ञा का अनादर करने में मेरा उद्देश्य कानून द्वारा स्थापित सरकार का अपमान करना नहीं है, बल्कि मेरा हृदय जिस अधिक बड़े कानून से-अर्थात अन्तरात्मा की आवाज को स्वीकार करता है, उसका अनुसरण करना ही मेरा उद्देश्य है।''

(मोहनदास करमचंद गांधी)

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली
(एक स्वायत्त निकाय, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)

प्रकाशक - मुद्रक : स्वामी गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के लिए पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092 से मुद्रित तथा गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110092 से प्रकाशित।